ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 60 दिसम्बर, 2015 अंक : 9

प्रधान सम्पादक
डॉ. एम.पी. सूद

वरिष्ठ सम्पादक
यादविन्दर सिंह चौहान

सम्पादक
वेद प्रकाश

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालय : हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374

ज्ञान सागर

झूठ बोलना तलवार के घाव की तरह है, घाव तो भर जाता है परंतु उसका निशान कभी नहीं जाता।

- शेख सादी

इस अंक में

लेख

- **मनोकामना पूरी करते हैं श्रीबालकरूपी** — अशोक सरीन — 3
- **भारतीय संस्कृति में नारी : अतीत से वर्तमान** — शिव सिंह चौहान — 9
- **समकालीन हिंदी कविता** — डॉ. सत्यनारायण स्नेही — 13
- **दलित साहित्य की पृष्ठभूमि** — डॉ. रमाकांत — 20
- **हिंदी पुस्तकें बनाम हिंदी पत्रिकाएं** — कृष्ण वीर सिंह सिकरवार — 24
- **चिट्ठी का सफरनामा** — प्रकाश गौतम — 31

कहानी

- **गो-वर्धन महोत्सव** — मू. ले. शिरीष पंचाल/ अनु. जेठमल ह. मारू — 34
- **खबर हो गया एक आदमी** — सैली बलजीत — 44

लघुकथा

- **कल की चिंता क्यों/ हारिए न हिम्मत** — रितेंद्र अग्रवाल — 23
- **सोच** — शबनम शर्मा — 43

कविता/ग़ज़ल

- **लाला लालोलाल है** — नवीन हलदूणवी — 19
- **विनोद ध्रब्याल राही की कविताएं** — 49
- **अमर बरवाल पथिक की कविताएं** — 50
- **चक्र** — पुष्पा मेहरा — 51
- **रामकुमार आत्रेय की कविताएं** — 52
- **हम जो चाहते हैं** — संजीव कुमार श्रीवास्तव — 53
- **दिनेश रावत की कविताएं** — 55

आखिरी पन्ना

- **वरिष्ठ साहित्यकार रामदयाल नीरज का जाना** — 56

अपनी बात

वर्ष 2015, हिमप्रस्थ पत्रिका के लिए कई मायनों में विशेष एवं घटनाप्रद रहा। विशेष इसलिए कि इसने इस वर्ष अपनी अनवरत यात्रा के 60 वर्ष सफलतापूर्वक पूर्ण किए। जिन उद्देश्यों को लेकर यह पत्रिका अस्तित्व में आई थी, उन्हें प्राप्त करने की दिशा में हम निरंतर प्रयत्नशील एवं अग्रसर हैं। साहित्यिक क्षेत्र, विशेषकर पाठकों में अपनी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता बनाए रखने के लिए पत्रिका, देश के ख्यातिप्राप्त साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाशित करती रही है और समय-समय पर विशेषांकों का प्रकाशन भी होता रहा है। इस परंपरा को जारी रखते हुए इस वर्ष हमने पत्रिका के साठ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में विशेषांक का प्रकाशन किया है। कुछ खट्टी-मीठी यादें, प्रिय-अप्रिय घटनाओं के साथ यह वर्ष भी हमें अलविदा कह रहा है। अप्रिय स्मृतियों से तात्पर्य हिमप्रस्थ के यशस्वी संपादक श्री रामदयाल नीरज जी इस वर्ष 8 नवंबर, 2015 को हमें सदा के लिए अलविदा कह गए। हिमाचल के साहित्यिक अदारों में 'मास्टर जी' और 'गुरु जी' के नाम से विख्यात नीरज जी का यूं अचानक चले जाना, उनके भाई-बंधुओं, प्रियजनों एवं परिजनों को गमगीन कर गया। साहित्यिक एवं सामाजिक जगत् विशेषकर गिरिराज एवं हिमप्रस्थ परिवार के लिए तो यह एक ऐसी क्षति है जिसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। हिमप्रस्थ को शुरू करने से लेकर उसे वर्तमान स्वरूप तक पहुंचाने में उनका योगदान अतुलनीय है। हिमप्रस्थ के आरंभिक दौर में, जब प्रदेश में न तो लेखक थे और न ही संपादकीय सहयोगी, पत्रिका के लिए सामग्री जुटाना दुष्कर कार्य था। अपने दम पर अकेले किसी प्रकाशन को देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के समानांतर ला खड़ा करना किसी चुनौती से कम न था। उन्होंने अपने संपादकीय दायित्वों को बखूबी निभाते हुए प्रदेश के उभरते एवं उदीयमान रचनाकारों के लिए एक सशक्त साहित्यिक मंच प्रदान किया। हिमाचल के इतिहास, लोक संस्कृति एवं साहित्य में उनकी गहरी पकड़ थी जिसकी झलक उनके संपादकीय कृत्यों एवं लेखन में देखी जा सकती है। साहित्य सृजन के क्षेत्र में उन्होंने कविता, ग़ज़ल, गीत, नाटक तथा निबंध लेखन के साथ-साथ लोक साहित्य विधा में भी विशेष योगदान दिया। 'हिमाचल की लोकगाथाएं' नामक पुस्तक में उन्होंने हिमाचल की जिलावार लोक गाथाओं को अनुवाद के साथ बेहद रुचिकर ढंग में प्रस्तुत किया जो लोक साहित्य के शोधार्थियों के लिए आज भी एक उपयोगी दस्तावेज है। हिमप्रस्थ की वर्तमान पीढ़ी को भले ही उनके साथ कार्य करने का अवसर न मिला हो, लेकिन उनका साहित्यिक एवं संपादकीय योगदान हमारे लिए सदैव प्रेरणास्रोत रहा है और भविष्य में भी रहेगा। हिमप्रस्थ में कार्यरत हमारी पीढ़ी का यह सौभाग्य है कि हमारे पास पत्रिका में संपादकीय सहयोगियों के विचारों का अथाह भंडार विद्यमान है जो हमारे लिए व आने वाली पीढ़ियों के लिए सदैव लाभप्रद एवं उपयोगी बना रहेगा। इस विरासत को हम आगे ले जाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहें, यही उनके लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी। लेकिन जीवन चलने का नाम है, बस, चलते जाना है। इस यात्रा में एक छोर पर बिछुड़न है, विसर्जन है, तो दूसरी ओर आगमन है, सृजन है। नया साल द्वार पर खड़ा है। उसका स्वागत है। अभिनंदन है। पाठकों को इस बेला पर हार्दिक शुभकामनाएं। आओ हम सब मिलकर इस पावन धरा पर नई सोच, नए जोश व होश के बीज बो कर नवसृजन के फूल सजाएं।

–संपादक

आलेख

मनोकामना पूरी करते हैं श्रीबालकरूपी

● अशोक सरीन

उत्तर भारत में भगवान शिव के दो प्रसिद्ध धाम हैं। कश्मीर में श्री अमरनाथ और हिमाचल में श्री मणिमहेश। हर वर्ष लाखों श्रद्धालु मोक्ष प्राप्ति के लिए वहां जाते हैं। ये धाम समुद्रतल से14 हजार फुट ऊंचाई पर स्थित हैं। इन धामों की यात्रा जुलाई-अगस्त, बरसात के दिनों में होती है। इन दिनों भारी वर्षा होने से जनजीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। श्री अमरनाथ व श्री मणिमहेश तक पहुंचने में श्रद्धालुओं को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऊबड़-खाबड़, पथरीले रपटीले मार्ग, वर्षा, तेज हवा, बर्फीली आंधी, अंधेरा, बादलों की गर्जना, आसमानी बिजली का कौंधना, शरीर को कंपकंपा देने वाली ठंड, ऑक्सीजन की कमी से सांस फूलना, आतंकवादियों का खौफ कदम-कदम पर श्रद्धालुओं की परीक्षा लेता है। पर भोलेनाथ के दर्शनों का जुनून श्रद्धालुओं की राह में आने वाली सभी बाधाओं को परास्त कर देता है। श्रद्धालु टोलियों में शिव महिमा का गुणगान करते हुए गंतव्य की ओर बढ़ते हैं। श्री अमरनाथ में जहां प्राकृतिक हिमबूंदों से निर्मित 15 फुट ऊंचे बर्फानी शिवलिंग में शिवजी के रूप में दर्शन होते हैं, वहीं कैलाश पर्वत जो शिवलिंग के आकार में विद्यमान है, के दर्शन कर श्रद्धालुओं का मनोरथ पूरा हो जाता है। कहा जाता है इसी कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती का वास है। प्रस्तुत कथा श्री मणिमहेश धाम से शुरू होती है।

हिमाचल प्रदेश में चंबा खूबसूरत पहाड़ी शहर है। सन् 1905 में यहां घूमने आए डच विद्वान डॉ. फोगल चंबा के मायावी सौंदर्य से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसे 'चंबा है अचंभा' कहा। रावी नदी के तट पर बसा यह शहर सन् 920 में राजा साहिल बर्मन ने अपनी बेटी चंपा की याद में बसाया था। चंबा श्री मणिमहेश का प्रवेश द्वार है। मणिमहेश धाम चंबा से 93 किलोमीटर दूर है। चंबा से 67 किलोमीटर दूर भरमौर नामक स्थान तक पर्याप्त बस सेवा है। यहां 84 प्राचीन मंदिर है। यहां से 13 किलोमीटर दूर हड़सर नामक स्थान तक हल्के वाहन जाते हैं। हड़सर से आगे 13 किलोमीटर धणछो और वहां से 7 किलोमीटर दूर पवित्र मणिमहेश धाम है। हड़सर से आगे 13 किलोमीटर का रास्ता चुनौतियों भरा है। सीधी चढ़ाई, खराब मौसम, सांस फूलने से श्रद्धालुओं को परेशानी होती है। पर धीरे-धीरे भक्तों का कारवां भगवान शिव का स्मरण कर मंजिल तक पहुंच जाता है। अधिकांश श्रद्धालु भरमौर से मणिमहेश तक पैदल चलते हुए पहुंचते हैं। दुर्बल, भारी शरीर वाले घोड़ों पर बैठकर मणिमहेश जाते हैं। यह तो था मार्ग परिचय। कैलाश पर्वत के पांव में बर्फीले पानी की झील है जहां श्रद्धालु स्नान कर सामने खड़े विशाल कैलश पर्वत को भोले नाथ का प्रतीक मान कर शीश नवाते हैं। हर वर्ष जन्माष्टमी को यहां स्नान पर्व होता है। देश के कोने-कोने से श्रद्धालु भोलेनाथ के दर्शनों के लिए श्री मणिमहेश धाम पहुंचते हैं। यहां दो प्रकार का स्नान होता है जिसे 'छोटा स्नान' और 'बड़ा स्नान' कहते हैं। हर वर्ष के स्नान को 'छोटा' और बारह वर्ष बाद 'बड़ा स्नान' जिसे महाकुंभ कहते हैं। हरिद्वार की तरह मणिमहेश में

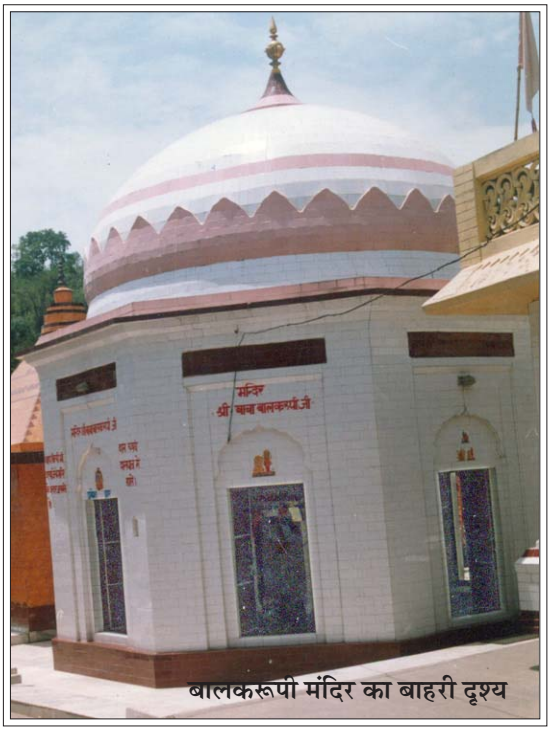

बालकरूपी मंदिर का बाहरी दृश्य

सामान्य व विशेष स्नान होता है। जो लोग सामान्य स्नान (छोटा स्नान) में न जा सकें वे बारह वर्ष बाद बड़े स्नान (महाकुंभ) में अवश्य जाते हैं। आइए, अब श्री बालकरूपी की शुरुआत करें।

पिंडी रूप में श्रीबालकरूपी

श्री मणिमहेश यात्रा की परंपरा सदियों पुरानी है। आज कहीं भी आने-जाने के लिए बस, रेलगाड़ी, वायुयान, समुद्री जहाज की सुविधा है। पर प्राचीनकाल में ऐसा कुछ न था। कहीं भी जाने के लिए पैदल चलना पड़ता था। तीर्थ यात्रा पूरी करने में कई दिन लग जाते थे। इस बात का भी संदेह बना रहता था कि घर से तीर्थ यात्रा पर निकला भक्त लौटकर भी आएगा या नहीं? ऐसी ही स्थिति में एक वयोवृद्ध व्यक्ति अपने जीवन की अंतिम वेला में मणिमहेश यात्रा पर निकला। वह शिव का परम भक्त था। बूढ़ा- कमजोर शरीर, टूटे-फूटे पथरीले रास्तों, खराब मौसम में उस वृद्ध व्यक्ति को चलने में बड़ी मुश्किल हो रही थी। उसने एक झोले में सफर के लिए कुछ खाने का सामान और वस्त्र डाल रखे थे। यह भारी झोला उठाना उसके वश से बाहर हो रहा था। मगर मन में भोलेनाथ के दर्शनों के मोह वह जैसे-तैसे आगे बढ़ रहा था। यात्रा के बीच रात गुजारने तथा थकान दूर करने के लिए वह वृद्ध एक गद्दी (भेड़-बकरी पालने वाला) के घर ठहर गया। उस गद्दी ने वृद्ध व्यक्ति का खूब आदर-सत्कार किया। प्रातः पुनः यात्रा शुरू करने से पूर्व वृद्ध भक्त ने अपना भारी थैला उस गद्दी के पास यह कहकर रख दिया कि वह लौट आने पर इसे ले लेगा। वृद्ध ने आगे बढ़ना शुरू किया। उसे ऊंचे पहाड़ पर चढ़ते हुए बड़ा कष्ट हो रहा था। दो कदम चलने पर सांस लेने में दिक्कत आ रही थी। मन-ही-मन शिव भगवान का स्मरण करने से उसे राहत मिल रही थी। अंततः पर्वतराज हिमालय के बर्फानी शिखरों को पार करते हुए वृद्ध भक्त श्री मणिमहेश जी के सरोवर पर पहुंच गया। वहां वह स्नानादि से निवृत्त होकर कैलाश पर्वत की ओर मुखकर अपने आराध्य भगवान शिव की पूजा में लीन हो गया। दिन गुजर गया। वहां आए अन्य श्रद्धालु पवित्र झील में स्नान तथा कैलाश पर्वत को नमन कर लौट चुके थे। पर वृद्ध भक्त वहीं आसन जमाए श्री भोलेनाथ के स्तुति गान में मगन था। जब वृद्ध ने शिव महिमा के गुणगान से निवृत्त होकर नेत्र खोले तो देखा सूर्य नारायण अस्ताचल की ओट में जा चुके थे। उनके अतिरिक्त उस समय वहां कोई न था। अब वह और भी निश्चिंत होकर शिव के ध्यान में खो गए। ईश्वर की इच्छा से जिस पर्वतराज (कैलाश) पर भगवान शिवजी के दर्शन होते हैं, उसी पर्वत से परम दैदीप्यमान ज्योतिष्मति, एक परमसुंदरी देवकन्या के तुल्य साक्षात् सिंहवाहिनी श्रीभवानी उमा भगवती एक स्वर्ण कलश हाथ में लिए नीचे उतरी और पवित्र झील में स्नान करके कलश को जल से भरकर तथा सुंदर-सुंदर फूल लेकर पुनः पर्वतराज कैलाश पर चढ़ने लगी। वह वृद्ध भक्त भी सम्मोहित होकर भगवती के पीछे-पीछे चलते हुए उस परमधाम दिव्य कैलाश पर्वत पर श्री माता पार्वती जी की कृपा से पहुंच गए। वहां श्री भगवान महेश्वर अपने सिंहासन पर बैठे हुए अपनी लीला से पार्वती जी से पूछने लगे, "हे देवी पार्वती! तुम्हारे पीछे यह मनुष्य कौन है? जो मेरे धाम में आ पहुंचा है। यहां पहुंचना तो बिना मेरी इच्छा के देवताओं को भी दुर्लभ है।"

यह सुन श्री जगदंबा भवानी पार्वती जी ने कहा, "आपकी कृपा के बिना किस में सामर्थ्य है जो यहां पहुंच सके। इसलिए मेरे पीछे-पीछे आने वाला यह मनुष्य कोई आपका ही बालक या पुत्र होगा। हे शंभो! आप जगत पिता हैं और आपकी ही कृपा से यह प्राणी मेरे पीछे-पीछे चलकर यहां पहुंचा है।" बस फिर क्या था? देवाधिदेव भोलेनाथ आशुतोष देवी पार्वती के इस प्रकार चातुर्यपूर्ण उत्तर देने पर प्रसन्न हो गए और अपना करकमल वरदानमय हाथ उन वृद्ध के सिर पर फेर कर वरदान दिया, हे भक्त! मैंने तुम्हें अपना निज बालक रूप दे दिया। अब तुम बालकरूपी नाम से विख्यात होओगे। मेरे ही नाम से अर्थात् शिव स्वरूप होकर संसार में पूजे जाओगे। सो हे वत्स! अब तुम धरती पर लौट जाओ। परंतु देवलोक पहुंचकर भगवान श्री महेश्वर जी के दर्शनों से इनके पूर्व जन्मों के कर्म-बंधन समाप्त हो गए थे। अब उस वृद्ध भक्त को धरती पर लौटना अच्छा न लग रहा था। वह मोक्ष प्राप्त कर चुके थे। उनका धरती (मातृलोक) से नाता टूट चुका था। वह भोलेनाथ के चरणों में गिरकर कैलाश पर्वत पर ही रहने का अनुरोध करने लगे। पर भोलेनाथ ने पुनः कहा, "बेटा, मेरा दिया हुआ वरदान कभी मिथ्या नहीं होगा। अब तुम शिवरूप हो गए। मेरे ही अनुरूप तुम्हारा भी पूजन होगा। जालंधर पीठ (कांगड़ा) में न्यूगल नाम की एक नदी बहती हुई व्यास गंगा से जाकर मिलती है। उसके दक्षिण किनारे पश्चिम दिशा में हार नामक ग्राम है, वह तुम्हारा निज आश्रम होगा। इस स्थान में तुम्हें सभी लोग 'बालकरूपी' नाम से तुम्हारी पूजा करेंगे। जो फल मेरी भक्ति, पूजन तथा ध्यान करने से मेरे भक्तों को प्राप्त होता है, वही तुम्हारे भक्तों को भी मिलेगा।" इतना कहकर श्री शंकर भगवान (मणिमहेश) ने उन्हें वहां से विदा

कर दिया।

कैलाश पर्वत से बालकरूपी, शंकर लौटकर उस गद्दी के पास पहुंचे जहां मणिमहेश जाते समय वृद्ध के रूप में उन्होंने अपने सामान का थैला रखा था। उन्होंने वह थैला उससे मांगा। परंतु गद्दी ने कहा वह थैला एक वृद्ध यात्री ने मेरे पास रखा था। वह जब मणिमहेश से लौटकर आएंगे तो मैं इसे उन्हीं को दूंगा, आपको नहीं। आप एक बालक हैं वह वृद्ध थे।

उस गद्दी को समझाते हुए बालकरूपी ने कहा, "हे मित्र! वह वृद्ध मैं ही हूं। श्री मणिमहेश (भगवान् शिवजी) की कृपा से बालक का रूप पाकर तुम्हारे पास आया हूं। वह थैला मुझे लौटाकर मुझे विदा करो।"

वह गद्दी असमंजस में पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। कुछ देर सोचने के बाद उसने प्रश्न किया, "महाराज, आप ही वह वृद्ध सज्जन हैं, तो बालक कैसे बन गए?" इतना कहकर उस गद्दी ने अपना सिर बालक रूपी शंकर के चरणों पर रख दिया और बालकरूपी रहस्य जानने के लिए अनुरोध करने लगा।

गद्दी के इस प्रकार प्रेमानुरोध को देखकर बालकरूपी बने उस वृद्ध ने सारी घटना विस्तार से उसे बता दी।

यह सुनकर वह गद्दी भगवान शिव के दर्शनों को लालायित हो उठा। उसने श्री बालकरूपी से कहा, "हे प्रभु! आज से आप मेरे गुरु और मैं आपका शिष्य हूं। आप मायावी देवलोक से श्री महादेव जी का आशीर्वाद पाकर बालकरूपी रूप में प्राणियों का उद्धार करने धरती पर आए हैं। मैं भी भगवान शंकर का भक्त हूं। मुझे उनके दर्शनों का मोह है। मेरी आपसे प्रार्थना है मुझे आप भी उनके दर्शन करवा कर मोक्ष दिलाएं। गुरु कभी अपने शिष्य को निरश नहीं करते।"

बालकरूपी ने उस गद्दी को बहुत समझाया कि अब भगवान् मणिमहेश के दर्शन करना असंभव है। तुम अपना हठ छोड़ दो। वहां श्री महादेव की इच्छा बिना कोई नहीं जा सकता। पर गद्दी न माना और बार-बार मणिमहेश जाने की जिद्द करने लगा।

बालकरूपी को अंततः अपने शिष्य गद्दी की बात माननी पड़ी। वह गद्दी को लेकर मणिमहेश की ओर चल पड़े। मणिमहेश पहुंचकर गुरु-शिष्य ने स्नान किया। इससे निवृत्त होकर वे कैलाश पर्वत पर चढ़ने लगे। तभी आकाशवाणी हुई, "हे बालक, ऊपर आने का प्रयास न करना। यहीं से वापस लौट जाओ। इसी में तुम्हारा भला है।"

बालकरूपी ने आकाशवाणी को अनसुना कर दिया तथा गद्दी के साथ पर्वत पर चढ़ने लगा। परिणामस्वरूप गद्दी जहां खड़ा था, वहीं शिला में बदल गया। यह मानवाकार की शिला आज भी मणिमहेश आए श्रद्धालुओं को दिखाई देती है। इससे पूर्व बालकरूपी आगे बढ़ते एक बार फिर आकशवाणी वातावरण में गूंजी- "बेटा, इस गद्दी को मैंने अपने गण 'कालीनाथ' का रूप दे दिया है। लोग इसकी पूजा करेंगे। तुम अपने निज आश्रम लौट जाओ। जो मैंने तुम्हें आदेश दिया है, उसका पालन करो। इस गद्दी भक्त को ऊपर आने का अधिकार न था, इसलिए शिलारूप हो गया। तुम्हें दिव्य (शिव) रूप दिया गया है। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। मेरी रची मर्यादा का उल्लंघन न करना। यह मेरी आज्ञा है।

आकाशवाणी सुन बालकरूपी ने एक बार शिला बन चुके अपने शिष्य गद्दी को देखा और अपने निज आश्रम की ओर चल पड़े।

वह गद्दी जो भगवान शंकर (मणिमहेश) की कृपा से उनके गण 'कालीनाथ' में बदल गया था, आज बाबा बड़ोह के नाम से प्रसिद्ध है। उनका बाबा बड़ोह नाम से एक अनाम भक्त ने नौ करोड़ रुपये की लागत से भव्य मंदिर बनाया है। यह मंदिर मंडी-पठानकोट राष्ट्रीय उच्चमार्ग पर नगरोटा बगवां नामक शहर से बाईस किलोमीटर दूर है। उस अनाम व्यक्ति ने मंदिर के साथ आस-पास के गांवों के छात्र-छात्राओं की सुविधा के लिए महाविद्यालय भी स्थापित किया है। कभी निर्जन, बियावान स्थल आज बाबा बड़ोह के कारण उत्तर भारत में प्रसिद्ध है। यहां हर वर्ष जून-जुलाई के माह में हर सोमवार मेला लगता है, जिसमें दूरदराज से लोग इस मंदिर में बाबा जी के दर्शन करने आते हैं। यहां मांगी सच्चे मन से मनौती अवश्य पूरी होती है।

उधर, भगवान शिव की आज्ञा पाकर बालकरूपी अपने निज आश्रम हार ग्राम आ गए। वहीं वह गांव के पास घने जंगले में बालक रूप में रहने लगे। इसी गांव के कुछ ग्वाले प्रतिदिन अपने मवेशी चराने जंगल जाते थे। इन्हीं ग्वालों में एक ब्राह्मण ग्वाला बारह-तेरह वर्षीय जोगू राम था, जो अपनी गाय, भैंस, बैल चराने जंगल जाता था। उसकी भैंसों में एक श्वेत रंग की छोटी आयु की कट्टी जो अभी 'नई' भी न हुई थी, भैंसों के झुंड से निकलकर नित्य जंगल के बीच बड़ी-बड़ी झाड़ियों में चली जाती। इन झाड़ियों के बीच छह-सात वर्ष का एक सुंदर, गोरे रंग का बालक साधु रूप में ध्यान लगाए बैठा रहता था। उसके सिर पर जटाएं, हाथों में दंड-कमंडल होता था। वह कट्टी उस बालक के पास खड़ी होकर जुगाली करने लगती। उसके थनों से दूध की धारा बालक के कमंडल में गिरती। इस दूध को जटाधारी बालक पी जाता।

इधर, कट्टी बालकरूपी को नित्य दूध पिलाती, उधर जोगू राम अपनी भैंसों के बीच कट्टी को न पाकर उसे यहां-वहां ढूंढता पर वह कहीं नजर न आती। पर शाम ढलते वह कट्टी गोशाला में आ जाती। जोगू राम को तब बड़ी हैरानी होती। जिस कट्टी को ढूंढने के लिए वह जंगल का चप्पा-चप्पा छान मारता, वह सांझ ढलते कैसे गोशाला आ जाती? जोगू राम के लिए यह रहस्य बना हुआ था।

एक दिन जोगू राम ने कट्टी का पीछा किया। कट्टी के पीछे-पीछे चलता वह घनी झाड़ियों तक पहुंच गया। आगे का दृश्य देख जोगू राम स्तब्ध रह गया। झाड़ियों के बीच एक सुंदर सुकुमार बालक श्री भगवान बाल मुकुंद के रूप सरीखा बैठा था। उसके चेहरे पर विशेष चमक थी। उसे देख किसी दिव्य बालक का आभास होता था। वह बालक अपने कमंडल में दूध भर जाने पर उसे पी जाता। जोगू राम अपलक निगाहों से यह सब देख रहा था। कुछ देर बाद जोगू राम सामान्य हुआ तो उसने बड़ी नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उस दिव्य बालक से पूछा, "महाराज, आप कौन हैं? इस कट्टी के थनों से दूध की धारा कैसे निकल रही है। कृपा करके मेरे इन प्रश्नों का उत्तर देकर मेरी जिज्ञासा शांत करें। हे भगवान! मैं एक अबोध बालक आपके श्री चरणों की शरण में आया हूं। मुझे अपना दास मानकर मेरा संदेह दूर कीजिए। इस समय मैं असमंजस में हूं जो मैं देख रहा हूं वह सच है या यह मेरी कल्पना है।

जोगू राम की नम्रता भरी वाणी और भोलेपन से प्रसन्न होकर बालकरूपी जी ने उसे शुरू से अब तक की पूरी जानकारी देकर अपने हाथों से उसे भी कट्टी का दूध पिलाया और उसे यह भेद किसी पर न प्रकट करने को कहा।

इस घटना के बाद जोगू राम पूर्णतया बालकरूपी शंकर को समर्पित हो गए। वह जंगल में अपने मवेशी छोड़ बालकरूपी जी की सेवा-सुश्रुषा करते। उस कट्टी का दूध, अपने प्रभु का दिया हुआ प्रसाद मानकर पी लेते। दिनभर जोगूराम उनके चरणों में पड़े रहते। कई बार घर भी नहीं जाते। भोजन, प्यास-नींद की परवाह न करते।

जोगू राम के अनायास इस परिवर्तन पर उसके माता-पिता बहुत चिंतित थे। उन्हें लगा उनका बेटा किसी रोग का शिकार हो गया है जिससे उसकी भूख-प्यास और नींद समाप्त हो गई है। शरीर कमजोर और चेहरा पीला पड़ गया है। वह बार-बार अपने पुत्र से पूछते बेटा, तुझे क्या कष्ट है? दिन-ब-दिन तुम्हारा शरीर कमजोर हो रहा है। तुम न भोजन करना न घर रहना पसंद करते हो। इसका क्या कारण है? जोगू राम को बालकरूपी जी ने भेद न प्रकट करने की हिदायत दे रखी थी। वह न अपना मुंह खोल सकता था न बालकरूपी जी सेवा करना छोड़ सकता था। जोगू राम की चुप्पी उसके माता-पिता का दुख बन गई।

एक दिन जोगू राम को उसके घरवालों ने बाहर जाने से रोक लिया और बार-बार उसके रोग के बारे में पूछने लगे। इस पर जोगू राम ने चुपके से अपने इष्ट देव बालकरूपी जी की शरण में जाकर विनती की, "हे प्रभु, मुझे मेरे घरवालों ने बाहर जाने पर अंकुश लगा रखा है। मुझे रोगी समझकर बार-बार मुझसे रोग का कारण पूछ रहे हैं। आपने अपना भेद खोलने से मुझे मना कर रखा है। इस स्थिति में मैं उन्हें क्या कहूं जिससे उन्हें संतोष हो जाए और आपको दिया वचन भी भंग न हो। हे स्वामी मैं आपकी शरण में आया हूं मेरी रक्षा कीजिए।"

अपने प्रिय भक्त जोगू राम को परेशान देख बालकरूपी ने कहा, "बेटा, तुम चिंता न करो। अपने माता-पिता से कह दो कि मैं अपने गुरु की शरण ग्रहण कर चुका हूं। यह जानकर वे सब जान जाएंगे और चिंतामुक्त होकर तुम्हारे रास्ते में बाधा नहीं बनेंगे।"

एक अन्य बात कह रहा हूं दुखी न होना। आज से मैं तुम्हें इस रूप में नज़र नहीं आऊंगा। तुमने मेरी बड़ी सेवा की है। इसलिए तुम मेरे प्रिय सखा हो। आगे भी तुम और तुम्हारा वंश मेरी पूजा करने (पुजारी) का अधिकार होगा। बेटा, मेरा भेद तुमने अभी तक दूसरों पर प्रकट नहीं किया था तो मैं तुम्हें इस रूप में मिलता रहा। अब मेरी आज्ञा से तुम यह रहस्य अपने माता-पिता को बता दोगे तो मैं भविष्य में इस रूप में नज़र नहीं आऊंगा।"

बालकरूपी के मुख से यह बात सुन जोगू राम उनके पांव पर सिर रखकर रोने लगा। मुझे ऐसी सजा न दो प्रभु। आपके बिना मेरा जीना मुश्किल हो जाएगा। मैं आपकी याद में तड़प-तड़प कर जान दे दूंगा।

बालकरूपी ने जोगू राम के सिर पर हाथ फेरते कहा, "बेटा, मैं तुम्हें अपने पुराने रूप में न मिल सकूंगा पर तुमको मेरी प्रतिमा मिलेगी। जिसके गले में शेषनाग और यज्ञोपवी का स्पष्ट चिह्न होगा। जिस स्थान से मेरी मूर्ति को खोदकर बाहर निकाला जाएगा उसे किसी उखाड़ने वाले अस्त्र की थोड़ी चोट लग जाने पर उससे दूध या रक्त की धार निकलेगी। उसे मेरा ही विग्रह समझ लेना। दूध की धार निकलने का अभिप्राय यह है कि लोग मुझे दुग्धाहारी कहेंगे और मेरा स्नान दूध से करवाया करेंगे। रक्तधारा का अभिप्राय बलि प्रदान से है। अब तुम घर जाकर अपने माता-पिता को सारी बात बताकर उनके मन का संदेह दूर कर दो।"

तांबे का बैल

जोगू राम बालकरूपी से अलग नहीं होना चाहते थे। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। उसका दुःख वैसा ही था जैसा प्रियजन के बिछुड़ने से होता है।

बालकरूपी अपने भक्त की मनस्थिति

भांप चुके थे। उन्होंने उसे ढांढस बंधाया और वर दिया कि महाशिवरात्रि और होली के उत्सव पर मैं तुमसे अपने असली रूप में मिला करूंगा। और जब कभी तुम्हारी इच्छा मुझसे मिलने की हो, मैं तुमसे उसी रूप में मिलूंगा जिस रूप में तुमने मुझे देखा है।

जोगू राम ने घर आकर अपने माता-पिता को अपने तथा बालकरूपि जी के बारे में सच्चाई बता दी जिसे सुन उन्होंने बेटे को गले से लगा लिया।

हिमाचल में जिला कांगड़ा के मुख्यालय धर्मशाला से आठ किलोमीटर दूर एक प्राचीन स्थान है 'अघंजर महादेव'। यह स्थान महात्मा लोगों की तपोभूमि है। कई वर्ष पूर्व यहां एक परम ज्ञानी वृद्ध महात्मा श्री लालपुरी जी योगीराज रहते थे। वह सर्वगुण संपन्न, उच्चकोटि के विद्वान थे। उनकी तपस्या के अद्‌भुत चमत्कार सर्वत्र विख्यात थे। उनकी ख्याति से प्रभावित होकर जोगू राम के पिता उन्हें सम्मान सहित अपने घर ले आए। जोगू राम के पिता ने विद्वान महात्मा को अपने बेटे के बारे सब कुछ बता कर श्री बालकरूपी जी की प्रतिमा जो कहीं धरती के नीचे थी, की प्रतिष्ठा करने की विनती की। महात्मा श्री लालपुरी जी जोगूराम को देखते ही सारी बात जान गए थे। उन्होंने उस स्थान पर जहां बालकरूपी अपने भक्त जोगूराम के साथ कट्‌टी का दूध पिया करते थे, वहां बालकरूपी की कीर्ति का गायन गांववासियों के साथ शुरू किया। धूप-दीप नैवेद्य सहित उस पवित्र भूमि का पूजन वेदपाठी पंडितों द्वारा करवा कर उस भूमि को पवित्र नदियों के जल से साफ किया गया। वहां नर-नारी भगवत् कीर्तन कर रहे थे। महात्मा जी की आज्ञा से भक्त जोगू राम अपने हाथों से कुदाल लेकर एक स्थान पर भूमि को खोदने लगे। जिस प्रकार सूर्य नारायण प्रातःकाल उदयाचल से उदय होते हैं, उसी तरह भगवान बालशंकर रूपी श्री बालकरूपी जी अपने भक्त जोगू रामकी प्रेम व भक्ति को देखकर भूमि से लिंग रूप में प्रकट हुए। उस स्थान को आज भी 'कुदाल-कूट' के नाम से जाना जाता है। भूमि खोदते समय बाल शंकर बालकरूपी की प्रतिमा पर कुदाल की दो चोटें लगी थीं। इनमें से दुग्ध की धारा और रक्त निकला। उसी समय एक पालकी सजाई गई जिसमें बालकरूपी की प्रतिमा को रख न्यूगल नदी के किनारे ले जाया गया। नदी के जल से प्रतिमा को स्नान करवाया गया। उस समय कुछ क्षणों के लिए नदी का पानी दूध में बदल गया। यह शुभ संकेत था। बालकरूपी की प्रतिमा को स्नान करवाने के बाद पुनः पालकी में रखकर कहार आगे बढ़े। रास्ते में पत्थर की चट्‌टानों में पानी के तेज प्रवाह से बड़े-बड़े गहरे कुंड बने हुए थे। उन कुंडों में एक पानी से भरे कुंड के पास थोड़ी देर विश्राम के लिए पालकी को रखा गया। बाद में यह पालकी इतनी भारी हो गई कि उसे उठाया न जा सका। पालकी के संग चल रहा जनसमूह हैरान था कि पालकी इतनी भारी कैसे हो गई? इतने में उस कुंड के बीच से आवाज आई मेरी प्रतिमा को इस कुंड के पानी से स्नान करवाओ फिर पालकी उठेगी। इस पर महात्मा श्री लाल पुरी जी तथा जोगू राम ने उस कुंड के जल से प्रतिमा को स्नान करवाया। तब पुनः जलकुंड से शब्द उभरा कि इस जलकुंड को नमन कर इसी के जल से स्नान करने वाली बांझ महिला की कोख हरी हो जाएगी। कई असाध्य रोग भी इस जल से दूर हो जाएंगे। इस कुंड को मेरा मुख्य द्वार माना जाए। यहां मेरे चरण चिह्न दिखाई देंगे। यह कुंड 'भुच्चर कुंड' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां चरण चिह्न भी हैं।

उस कुंड के जल स्नान के बाद बालकरूपी जी की प्रतिमा को पालकी में बिठा कर एक रमणीक स्थान पर लाया गया। इस ऊंचे स्थल पर कई सुंदर फूल और घने छायादार वृक्ष थे। उस स्थान पर गंगाजल, चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप तथा नाना प्रकार के नैवेद्य से धरती का पूजन करके श्री बालकरूपी की प्रतिमा को महात्मा लालपुरी और वेदपाठी पंडितों ने जोगूराम के हाथों पूजन करवाकर स्थापित करवा दिया। बालकरूपी जी के मंदिर में बाल शंकर बालक रूपी जी के पवित्र दर्शनों के साथ मंदिर के प्रांगण में नंदीगण (बैल) के भी दर्शन करने योग्य हैं। यह एक बड़ी सुंदर और विशालकाय तांबे की मूर्ति है। नंदीगण की स्थापना के पीछे भी एक कथा जुड़ी है जो इस प्रकार है :

एक दस वर्षीय कन्या जो राजपूत घराने की थी, की मां का देहांत हो जाने पर उसकी विमाता उससे घर के कामों के अतिरिक्त जंगल में मवेशी चराने का काम भी करवाती थी। कन्या इस काम को करने से कतराती थी। उसे पशुओं के साथ अकेली जंगल जाना अच्छा न लगता था। पर विमाता की आज्ञा टालना उसके वश में न था। एक दिन साहस कर उस कन्या ने विमाता से कहा कि वह पशुओं को चराने के लिए जंगल नहीं जाना चाहती। वहां उसे डर लगता है। इस पर विमाता गुस्से में लाल होती बोली, "तू कोई राजकुमारी नहीं है जो जंगल नहीं जा सकती। तुझे यह काम करना ही होगा। अब फिर कभी यह बात न करना नहीं तो बुरा होगा।"

विमाता के तेवर देख वह कन्या पशुओं को चराने जंगल चली गई। जंगल में वह बालकरूपी को मन में याद कर उनसे प्रार्थना करती कि हे भगवान मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है। विमाता मुझसे बहुत काम लेती है। मैं जंगल में पशु चराने नहीं जाना चाहती। मेरी आपसे विनती है कि इस काम से मुझे मुक्त करवा दो। यह प्रार्थना वह हर रोज करती। उसकी प्रार्थना रंग लाई। संयोगवश उस जंगल में शिकार खेलते राजकुमार वहां से गुजरे जहां वह कन्या अपने पशु चरा रही थी। जैसे ही राजकुमार की दृष्टि उस कन्या पर पड़ी, वह उसे अपनी रानी बनाने का मन बना बैठे। राजकुमार ने अपने कुछ अनुचरों को आज्ञा देकर उस कन्या के संबंधियों को बुलाया और उस कन्या से अपना ब्याह करने की इच्छा प्रकट की। कन्या के संबंधियों ने खुशी-खुशी राजा

की बात मान ली। कन्या की बड़ी धूमधाम से राजकुमार के साथ शादी हो गई। रानी बनने के बाद कन्या पिछली बातें भूल गई। विवाह के बाद उसने बालकरूपी को याद तक न किया। बस राजसी वैभव में खो गई। कुछ समय बाद रानी, राजा कुछ अन्य परिवार के लोग अपने आप फूल गए। इस रोग को दूर करने के लिए बड़े-बड़े नामी वैद्यों ने अपने नुस्खे आजमाए पर व्यर्थ रोग दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया। जब कोई भी उपाय सार्थक न हुआ तो राजपरिवार की चिंता बढ़ गई। एक रात एक छोटी सी कन्या ने रानी को स्वप्न में प्रकट होकर कहा, "रानी तू सब कुछ भूल गई। तू विमाता के उन शब्दों को भूल गई जिसने तुम्हारे जंगल में पशु न ले जाने की बात सुन कहा था कि तू कोई राजकुमारी नहीं है। तुम यह भी भूल गई कि जंगल में बालकरूपी जी से तूने इस काम से मुक्ति दिलाने के लिए मनौती मांगी थीं अब तू महाराज अभय चंद की महारानी बन गई तो सब कुछ भूल गई। तुमने जो मनौती पूरी होने पर भेंट करने की बात भगवान बालकरूपी से की थी, उसे पूरा कर। इतना कहकर वह दिव्य कन्या अदृश्य हो गई। रानी को अपना वचन याद आया। उसने बालकरूपी जी से मनौती मांगी थी कि यदि वह जंगल जाने से बच गई और उसका विवाह किसी राजकुमार से हुआ तो वह तांबे का बैल मंदिर में स्थापित करेगी। रानी को अपना वचन पूरा न करने का दुख हुआ। उसने बालकरूपी से अपनी भूल के लिए क्षमा याचना कर एक तांबे की मूर्ति मंदिर के प्रांगण में स्थापित करवा दी। मूर्ति स्थापना से राजपरिवार के सभी सदस्य रोगमुक्त हो गए।

इस बैल रूपी मूर्ति के उबटन रूप में आटा, थोड़ा देसी घी, हल्दी मिलाकर मलने से दाद, खुजली, चम्बलादि चर्म रोग ठीक हो जाते हैं। बैल के पीछे उसकी पूंछ पकड़े ग्वाले की मूर्ति है। लोग अपने बच्चों की रक्षा के लिए इस ग्वाले को वस्त्र चढ़ाते हैं। श्री बालकरूपी जी से कई अलौकिक घटनाएं जुड़ी हैं। सन् 1866 में जुलाई मास के पहले सोमवार को बालकरूपी की मूर्ति से पसीना बहने लगा जिससे मूर्ति से शृंगार उतर गया। उनकी मूर्ति को चंदन से धोकर पुनः उसका शृंगार किया गया। वहीं एक अन्य चमत्कार हुआ। मंदिर प्रांगण में बैल की मूर्ति से मूत्र बहने लगा। यह मूत्र केसरी रंग की धारा में तीन दिन तक बहता रहा। उस समय असंख्य लोगों ने इस करिश्मे को अपनी आंखों से देखा। लंबाग्राम रियासत के राजा प्रताप सिंह कई गणमान्य व्यक्तियों के साथ यह कौतुक देखने बालकरूपी मंदिर में आए थे। वहां उपस्थित सभी लोगों ने अपनी-अपनी पगड़ियां (उन दिनों सिर पर पगड़ी बांधने का रिवाज था) बैल के केसरी रंग के मूत्र से रंग कर अपने सिर पर बांधी थी। दूसरी बार अगस्त 1911 के माह में इसी नंदीगण ने लाख त्यागी थी जैसे छोटे-छोटे बछड़े मल त्याग करते हैं। लाख (मल) का त्यागना एक माह तक जारी रहा था। यह दूसरी घटना जोगूराम वंश की सातवीं पीढ़ी के पुजारी पंडित मोरध्वज शर्मा ने प्रत्यक्ष देखी थी।

श्री बालकरूपी जी की महिमा दूर-दराज तक फैली हुई है। जिनके घर संतान न हो या कोई मानसिक अथवा शारीरिक रूप से दुखी हो वे बालकरूपी जी की शरण में आते हैं और मनवांछित फल पाते हैं।

बालकरूपी जी के मंदिर के साथ ही श्री कामाख्या देवी का प्राचीन मंदिर है; यहां भी लोग बड़ी श्रद्धा से देवी के दर्शन करते हैं। शिवशक्ति सदा अभिन्न रूप से इस क्षेत्र के लोगों का कल्याण करती हैं। इस कारण श्री जगदंबा कामाख्या देवी की यात्रा भी आवश्यक है।

श्री महाशिवरात्रि के पर्व से ही बालकरूपी जी की होली शुरू हो जाती है। सर्वप्रथम बालकरूपी जी की प्रतिमा के ऊपर केसर, गुलाल और रंग डाला जाता है। उसके बाद मंदिर से यात्रा शुरू होती है और श्री जोगू राम जी की प्रतिमा के ऊपर भी केसर, गुलाल व रंग डाला जाता है। रात्रि के समय बालकरूपी जी का विशेष पूजन होता है। रात्रि जागरण में आस-पास के गांवों से लोग बड़े उत्साह से मंदिर आते हैं। अर्द्धरात्रि के समय आरती होती है। होली तक यूं ही समारोह चलता है। होली दिवस पर भी बालकरूपी जी तथा भक्त जोगू राम की प्रतिमाओं पर केसर, गुलाल व रंग डाला जाता है। उस दिन लोग बालकरूपी, जोगू राम के साथ गुलाल की होली खेलते हैं।

जिला कांगड़ा के प्रमुख शहर पालमपुर से बालकरूपी मंदिर जो बालकरूपी गांव में स्थित है, चालीस किलोमीटर दूर है। पालमपुर-हमीरपुर राज्य मार्ग पर पालमपुर से पैंतीस किलोमीटर दूर जांगल नामक स्थान से एक पक्की सड़क पांच किलोमीटर दूर बालकरूपी मंदिर को छूती है। अधिकांश लोग जांगल से बालकरूपी पैदल सफर करते हैं। पर जो चलने में असमर्थ हैं, उन्हें जांगल से बस, थ्रीव्हीलर मंदिर जाने के लिए मिल जाता है। वर्षभर बालकरूपी मंदिर में श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है। दूर-दूर से लोग अपने बच्चों का यहां मुंडन संस्कार करने आते हैं। बालकरूपी जी की कृपा से यह निर्जन स्थान अब सारा वर्ष श्रद्धालुओं से भरा रहता है। इन्हीं की मेहरबानी से लोगों को रोजगार मिला है और परिवार दो जून रोटी खा रहे हैं। यहां जमा दो तक पाठशाला है, बैंक व पचास दुकानों का बाजार बन गया है। चाय-नाश्ता, प्रसाद के अतिरिक्त यहां विविध प्रकार के सामान की दुकानें हैं। मंदिर में रात्रि विश्राम के लिए धर्मशाला और अन्य सभी सुविधाएं मौजूद हैं।

सिटी लाईट प्रिंटर्ज, पालमपुर, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-176 061, दूरभाष : 01894 232565

आलेख

भारतीय संस्कृति में नारी : अतीत से वर्तमान

● शिव सिंह चौहान

मानव सभ्यता के आदिकाल से नारी कुटुम्ब का एक मूल घटक बनी रही है। समाज और वर्गीय समुदाय में उसकी भूमिका पूर्व निर्धारित है। सृष्टि में प्रकृति के उपरांत उसकी भागीदारी को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। मनुष्य ही नहीं, सब सचर जीवों की दुनिया में उनकी मादाओं की समुदाय में हिस्सेदारी को स्पष्ट रेखांकित किया जा सकता है। शेर, हाथी और दीगर चौपायों में उनकी मादाओं की परिवार के सौख्य में हिस्सेदारी उनके प्रजातीय स्तर पर बराबर बनी रहती है। पतंगे, भुनगे और परिन्दे भी ऐसी विशेषताओं से वंचित नहीं। इसी तरह परिन्दों का अपना अलग संसार है जिसमें पखेरू मादाओं का उनके जातीय-प्रजातीय परिवेश में महत्त्वपूर्ण योगदान बना रहता है।

इनके बरक्स आदमी एक परिष्कृत समझ और विवेक-बुद्धि को धारण करने वाला जीव है। स्त्री का वुजूद मानव सभ्यता और संस्कृति के आचरण का एक कार्यकारी उपांग है। मानव सभ्यता को प्रकृति और विराट सत्ता का एक नायाब उपहार है वह। स्त्री परम्परागत मानवीय मूल्यों को न केवल सुरक्षित बनाए रखती है अपितु अपनी संतान को वह बेशकीमती संस्कारों से भी पामाल करती है। पुरुष जबकि बाहर के कार्यों और आजीविका की जिम्मेदारियों को वहन करता है। स्त्री आने वाली पीढ़ियों को जन्म देकर उनका सम्पोषण करते हुए समग्र देश-काल में मानव संभावनाओं को सुचारू ढंग से व्यवस्था में बांधकर उसे एक निर्भर करने योग्य कार्य व्यापार में बदल देती है। संसार को उसने हर युग में प्रतिश्रुत नायक और महानायक दिए हैं जिन्होंने समय-समय पर सभ्यता को पतन से बचाया है और आड़े समय में उसे एक आदर्शोन्मुख व्यवस्था से नवाज़ा है।

उपर्युक्त नज़रिए से स्त्री की भूमिका को मानव समाज में एक सामान्य अथवा औसत रुतबा नहीं दिया जा सकता। ऐसे स्वर्ण युग भी आते और जाते रहे हैं जब परिवार एक समुदाय के रूप में नमूदार थे और जहां कबीलाई व्यवस्था मूलतः घर-परिवार की महिला के हाथ में रही। पूर्व वैदिक काल में मातृ-प्रधान व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं। तब परिवार साझे थे, संयुक्त थे और घर की प्रधान महिला का ही एकाधिकार था। इससे पूर्व वनवासी आदिम समाज में भी स्त्री ही प्रमुख कर्ताधर्ता थी। सभी दैनन्दिनीय चर्याओं के सूत्र भी प्रधान स्त्री में ही निहित थे। देवासुर संग्राम और सभ्य आदमी की सत्तात्मक प्रभुता के कारण अन्य युद्धों के वृहद् कालखंड में स्त्री की जातीय सुरक्षा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ और तद्नुसार पुरुष ने पूरे समाज के संचालन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और इस तरह तत्कालीन समाज में नारी का रुतबा और उसकी प्रतिष्ठा मांद पड़ गई। इस खतरनाक और अप्रिय सामाजिक रूपान्तरण में न केवल अहंकारी क्रूर दानवों अपितु इन्द्र जैसे देवताओं की भी खलनायकीय भूमिका रही। राजसी सत्ता का तथाकथित जनतंत्र और देश चाल भी स्त्री-वर्ग की प्रतिष्ठा के विघटन का कारण बनी। गौतम पत्नी अहल्या से इन्द्र द्वारा किया गया व्यभिचार, रावण द्वारा सीता का अपहरण इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। विदर्भ के राजा जनक के दरबार में ज्ञानियों के बीच शास्त्रार्थ करने वाली मेधावी ऋषि पुत्री गार्गी की प्रतिवाद करती ध्वनि तब मंद पड़ गई थी। पुरुष प्रधान समाज के निर्माण के बाद त्रेता और द्वापर की स्त्रियां आक्रांता तत्त्वों का शिकार बन गईं और अंततः वे समय की विपरीत आंधियों द्वारा लज्जित, उपेक्षित और शोषित होती रहीं। एक धोबी के कहने पर सीता निन्दित हुई, उसकी पवित्रता पर सन्देह किया गया और एक धीरे-धीरे पति को जो अपने समय का एक युगन्धर नायक था, उसे अपनी पत्नी का परित्याग करना पड़ा। जिस धीरोदात्त त्रेतायुग के महानायक राम ने अभिशापित अहल्या को शापमुक्ती दी थी और जिसके हृदय में अपने समय की नारियों के लिए स्नेह और आदर भरा था- लोक निन्दा के डर से उन्होंने अपनी एक अनिन्द्य धर्मपरायण पत्नी के परित्याग में देर न लगाई। पता नहीं किस पाप का प्रायश्चित करवाना चाहते थे भगवान राम। स्त्री की विडम्बना का यह एक सनसनीखेज ज्वलंत उदाहरण है। न्याय हार गया और तर्क येन-केन-प्रकारेण जीत ही गया।

रामायण की उत्तर रामचरित मानस-स्थिति मूलतः एक महत्त्वपूर्ण राजसी स्त्री के चरित्र हनन को रेखांकित करती है।

वैदिक नारी की आदर्श छवि खंडित हुई थी। रामायण काल द्विजातीय सभ्यताओं के आंतरिक द्वंद्व को संकेतित करती एक कालजयी घटना है। इस द्वंद्व में जहां एक तरफ असंतुष्ट राक्षस जाति के राजसी लोग हैं, तो दूसरी तरफ वे आगंतुक आर्यावर्त के लोग है जिनकी अपनी एक अलग संस्कृति और एक अलग आचार संहिता थी। एक तरफ था गुरु शुक्राचार्य का दक्षिणात्य कबीला तो दूसरी तरफ था उत्तरी ध्रुव क्षेत्र से आई आर्य जनजातियां जो स्वयं को उच्च वर्गीय और श्रेण्य मानती थीं। ऐसे युद्ध यूनान में भी हुए हैं। 'हेलन ऑफ ट्राय' इसकी एक समुचित ऐतिहासिक मिसाल है। सब जानते हैं कि महाभारत की लड़ाई महज़ भूमि के असमान विभाजन के कारण नहीं हुई थी। महाभारत के चतुरंग (चौसर) में द्रौपदी ही एक अति महत्त्वपूर्ण युद्ध क्रीड़ा का मोहरा बनी थी।

महाभारत काल में भी तत्कालीन समय की नारी पुरुष के खलनायकत्व और एकाधिकार का उपकरण बनी हुई थी। उस युग के महानायक कृष्ण ने ऐसी ही शोषित की गई सोलह सौ स्त्रियों को दुष्ट जरासंध की कैद से मुक्त कराया और उन्हें अपनी नवस्थापित राजधानी द्वारिका में पुनर्स्थापित किया था। द्वापर के अंत तक स्त्री की प्रतिष्ठा अधिकांशतः समाप्तप्राय नज़र आती है। वैश्विक व्यवस्था में उसकी प्रतिष्ठा आदरयोग्य थी जबकि चर्चित युग के अंत तक पहुंचते पहुंचते मानव-सभ्यता की यह मूल्यवान मानवीय धरोहर उसकी आदर्श छवि पूरी तरह जर्जर और खंडित हो चुकी थी। और तब, उसके बाद, उसका साधारणीकरण हुआ और वह एक सामान्य सी सामाजिक एकक बन कर रह गई। समय के गलियारे में स्त्री की प्रतिष्ठा और उसके रुतवे का उतार-चढ़ाव एक निरंतर चलती हुई दिलचस्प ऐतिहासिक-सामाजिक प्रक्रिया है जिस पर हम आगामी सन्दर्भों में परिचर्चा करेंगे।

यदि पौराणिक साहित्य और देवताओं से सम्बन्धित कथाओं का अनुगमन किया जाए तो देवताओं का राजा इन्द्र एक विलासी और आमोद-प्रमोद चाहने वाला व्यक्ति रहा होगा। प्रासंगिक कथाओं में उसका महल और उसका दरबार सभी राजसी उपादानों से लैस नज़र आता है। वहां अप्सराओं की एक दीर्घा भी दिखाई देती है। वे सब नृत्यांगनाएं हैं। इन्द्र सभा को अलौकिक सौंदर्य से परिपूरित करती हुई। अर्थात् स्वर्ग के देवतागण भी घरेलू स्त्री और पोषित पतिकाओं में भेंद करते थे। इन्द्र अकसर उनका इस्तेमाल कामिनियों के रूप में करते थे ताकि अध्यात्मक में डूबे ऋषियों की तपस्या को भंग किया जा सके और स्वर्ग में अपने सिंहासन को सुरक्षित रखा जा सके। इसके अलावा विष-कन्याओं और सुरा-सुंदरियों का ज़िक्र भी चर्चित साहित्य में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। गुप्तचर व्यवस्था को चालने वाली ये मायावी शक्तियां एक ऐसी श्रेणी की स्त्रियों की ओर इशारा करती हैं जिन्हें व्यवस्था ने खरीदा हो। वे सब राजसी सत्ता के सक्रिय पुर्जे से हैं जो शासकीय सत्ता को दुर्भेद्य बनाने में सहायक रही हैं। उत्तर मध्यकाल और पूर्व-वर्तमान काल में यही स्त्रियां रसिक लोक में मानसिक और शारीरिक आनंद का स्रोत रही हैं।

गुप्त काल की नगरवधुएं भी राजसी और श्रेष्ठी वर्ग को समय-समय पर आह्लाद प्रदान करती रही हैं। उनका संस्थानगत रूप से ज्यादा शहरी और कस्बाती रुचि का संवर्द्धन करती रही है। तुर्क, पठान और मुगलिया युगों में इसने एक यौन व्यवसाय का बाज़ारू रूप ग्रहण किया जो स्त्री वर्ग के यौन शोषण और उसे एक काम-कर्मी के रूप में प्रस्तुत करता है। इस तरह की स्त्री मंडी और बाज़ार व्यवस्था जहां एक ओर स्त्री की नैतिक गिरावट को अंकित करती है, वहीं पूरे पुरुष समाज के नैतिक विघटन और पतन को भी प्रचुरता से साथ छायांकित करती है।

समकालीन कालखंड में समीप वर्तमान और तत्कालिक वर्तमान में आज हम नारी के अनेकानेक वर्गीय रूपों को रेखांकित कर सकते हैं। प्रमुखतः इनमें शासनाध्यक्ष, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञों और दीगर प्रौद्योगिकीविद् तथा बहुधा व्यावसायिक श्रेणियां हम चिन्हित कर सकते हैं क्योंकि वर्तमान युग एक जनवादी वर्गीय युग है जिसमें आधुनिक स्त्री की भूमिकाएं विशद् हैं।

समकालीन कालखंड में समीप वर्तमान और तात्कालिक वर्तमान में आज हम नारी के अनेकानेक वर्गीय रूपों को रेखांकित कर सकते हैं। प्रमुखतः इनमें शासनाध्यक्ष, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञों और दीगर प्रौद्योगिकीविद् तथा बहुधा व्यावसायिक श्रेणियां हम चिन्हित कर सकते हैं क्योंकि वर्तमान युग एक जनवादी वर्गीय युग है जिसमें आधुनिक स्त्री की भूमिकाएं विशद् हैं।

महाभारत का युद्ध समाप्त होने और महानायक भगवान कृष्ण के अवसान के बाद भारतीय इतिहास एक अंधे युग में परिवर्तित हुआ। पौराणिक मूल्यों का क्षय होता रहा जिसका असर भारतीय महाद्वीप के निवासियों पर भी पड़ा। मनु की वर्णाश्रम व्यवस्था पूरी तरह खंडित हो चुकी थी और उसके स्थान पर जातीयता की कट्टरता अपनी जगह बना रही थी जिसने पूरी सामाजिक व्यवस्था को खंड-खंड कर दिया। स्त्रियों में भी रूढ़िवाद और अंधआस्था ने अपना स्थान बना लिया। ब्राह्मणवाद का पाखंड भी जनलोक में अपना प्रभाव छोड़ता रहा जिसका प्रतिहार बुद्ध और महावीर द्वारा प्रवर्तित धर्मों द्वारा किया गया। जैनियों में समाज के वे वर्ग आए जो त्रिजातीय द्विजों से बाहर थे। बौद्ध और जैन धर्मों ने एक नए अवतारवाद ने आम और श्रेष्ठी जनों में

अपनी पैठ बना ली। कुछेक शताब्दियों तक परिवर्तन का क्रम चलता रहा। उधर जनलोक में भी ग्राम्य की जगह नगरी सभ्यता को लोकप्रियता प्राप्त हुई। लेकिन उत्तर महाकाल में शंकराचार्य के आगमन से हिंदू वर्ण व्यवस्था अपने एक नवीन रूप में उभरकर सामने आई जिसने वर्णगत समाज को अपनी परम्परा को एक नए सिरे से आगे आने का अवसर प्रदान किया। जैन धर्म कुछेक जाति-वर्गीय समुदायों तक ही सीमित बना रहा और बौद्ध धर्म देश की संस्कृति में अपनी प्रभुता कायम नहीं कर सका। इन नए दो सम्प्रदायों का उत्तरोत्तर विभाजन भी हुआ। जैन मतावलम्बी श्वेताम्बर, दिगम्बर और बौद्ध हीनयान और महायान में बंट चुके थे। बुद्ध महायान की माध्यमिक शिक्षाओं को लेकर आए थे जबकि हिंदुओं के तंत्र सिद्धांत भी कालांतर में इसमें शामिल हो गए।

इन बातों का प्रभाव नए उदित हो रहे महिला-समाज पर भी पड़ा। वह भी अलग-अलग वर्गों में विभाजित हो रही थी। जातीय कट्टरता से प्रपीड़ित आम स्त्री समाज और दलित समार्जन संत और भक्ति मतों की भी राह पकड़ी और इस तरह समाज की पूरी संरचना में ही अभूतपूर्व बदलाव आता गया। मगर इन परिवर्तनों के बावजूद इतिहास के दबावों से प्रभावित आम स्त्रियों ने अपनी आस्तिकता और परम्परा को नहीं छोड़ा। बेशक जब उनके जनलोक में वह नए बदलावों और लोक संस्कृति को अपनाती रही थी।

पूर्वोत्तर काल में समय-समय पर यूनानी, तुर्क, मंगोल आदि आक्रांताओं ने भी धर्म संकुल हिंदू समाज को पर्याप्त प्रभावित किया। इससे धीरे-धीरे सोच-विचार, आचार-व्यवहार और रहन-सहन में भी परिवर्तन आता जा रहा था। प्राचीन भारतीय संस्कृति अब रूढ़ और असहिष्णु होती जा रही थी। अतः इन प्रभावों ने भारतीय नारी वर्ग में भी सांस्कृतिक पेचीदगियों को साथ लाया। सुदूर दक्षिणात्य व्यक्तियों ने यद्यपि प्राचीन भारतीय श्रेण्य तत्त्वों को उसकी निरंतरता में अवश्य ही महफूज़ रखा। पुरा-भारतीय जातीय संस्कृति के मूल्यों को सुरक्षित रखने में दक्षिण भारत के स्त्री समाज का भरपूर योगदान रहा है। यह बात वहां के नृत्य, संगीत और लोकोत्तर क्लासिकी कलाओं में आज भी महफूज़ देखी जा सकती है। उत्तरवर्ती क्षेत्रों में यद्यपि बाह्य एवं आंतरिक प्रभावों के कारण वहां के स्त्री समाज में व्यापक रूपांतरण नज़र आता है। इन क्षेत्रों की परम्पराएं विशुद्ध रूप से लोक परम्पराएं हैं- अलग-अलग ग्राम्य और अर्धनगरीय क्षेत्रों के लिए अलग-अलग जिसके तत्त्व उस जनलोक में आज भी देखे जा सकते हैं।

मुगलों के समय में स्त्री को अपनी शुचिता और नैतिकता बनाए रखने के लिए पर्दे और घूंघट का रिवाज़ भी प्रचलित रहा, पर अंगरेजों के आने के बाद उसमें कुछ ढील अवश्य ही आ गई थी। और अब तो ये पर्देदारियां और झरोखे से चुपके-चुपके झांकने वाली व्यावहारिक संस्कृति अब पूरी तरह नष्ट हुई नज़र आती है। नई शिक्षा और नई-नई सोच में नई भारतीय तहज़ीब पर ऐतिहासिक समय के अंतरालों के मध्य दूसरी संस्कृति के प्रभाव भी कमोबेश बने रहे हैं। सिकंदर और उसके सेना अधिकारियों की आमद के कालखंड में भी ये प्रभाव देखे जा सकते हैं। वह मौर्यों और तत्कालीन राजनय के महारथी चाणक्य का समय था जिसे चंद्रगुप्त, बिदुंसार और अशोक जैसे प्रियदर्शी सम्राटों और उनके प्रजा जनों ने भी महसूस किया था। उस समय की समर नीति, कला व स्थापत्य में इसे असरंदाज देखा जा सकता है। तत्कालीन महिला समाज में भी ये क्रॉस कल्चर इन्फ्लूएन्स इतिहास की पर्तों में ढूंढने पर अवश्य ही मिल जाएंगे।

मुगलिया शासन काल में पर्शियन कला, सौंदर्य बोध और स्थापत्य सम्बंधी साज-सज्जा प्रभावी हुई। मुगलिया रहन-सहन, पहनावा और पाकशास्त्र भी भारतीय रसोई घरों और मेहमान नवाज़ी के समारोहों पर दर्शनीय है। इसे अवशेष के रूप में आज भी हम अपने दस्तरखानों में परिलक्षित कर सकते हैं। भारतीय पारम्परिक लोक संगीत में भी हम इन प्रभावों को देख सकते हैं। तुर्की कालखंड में अमीर खुसरो की सूफियाना रंगत महिला शैली गीतों में बराबर देखने को मिलती है। इस्लामिक क्षेत्रों के लोग यहां की लोक कला, रीति-रिवाज और समाज शास्त्र से पूरी तरह प्रभावित थे जिसका पर्यवेक्षण मुस्लिम सूफियाना प्रचारकों ने एक समन्वित संस्कृति के निर्माण के रूप में किया था। वे खूबियां मुस्लिम राजसी हरमों और अमीरी जनानखानों से भारतीय नारी संसार में पहुंची थी और प्रत्युत्तर में पारम्परिक विनिमय के स्तर पर सांस्कृतिक अदारों तक अपनाई जाती रही। अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में समन्वित संस्कृति का जो रूप बना, उसमें दोनों की घरेलू संस्कृति का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। पुरुषों के अलावा स्त्री वर्ग ने भी इस सांस्कृतिक सामाजिक प्रक्रिया में वैकल्पिक और अनुपूरक स्तर पर भूमिका-प्रतिभूमिका निभाई, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि सम्राट औरंगजेब की कट्टर साम्प्रदायिक गतिविधियों के कारण परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान का यह व्यवहार कहीं मंद पड़ गया था फिर भी इसकी भूमिगत अंतर्धारा से इनकार नहीं किया जा सकता। मुगल पहरावे और व्यवहार पर राजस्थान का आंशिक प्रभाव भी उस समय के परशियन लोक में कायांतरित देखने को ऐतिहासिक संग्रहागारों में अवशेष के रूप में देखने में आता है जिसका इतिहासकारों और कला समीक्षकों ने विस्तृत अध्ययन किया है।

मुगलिया रजवाड़ाशाही के उपरांत यूरोपीय संस्कृति के देशांतर प्रभाव भी ब्रिटिश शासनकाल के समय के हम आज स्पष्ट चिन्हित कर सकते हैं। मगर यह एक आशास्पद बात है कि भारत मूल के महिला वर्ग ने अपने परम्परागत सांस्कृतिक रूपों को कभी

एकांगी व्यवहार नहीं दिया अपितु परात्मिक यूरोपीय प्रभावों को पूरे तार्किक ढंग से अपनी जीवनचर्या में समोया है। अर्थात् सलवार- कमीज और पुराने आभूषणों को भी नए-नए डिजाइनों में घड़वा कर शालीनता के साथ अपनाया।

भारतीय महिलाएं आज बहुरंगी देशिक संस्कृति का एक अनुपम उदाहरण हैं। उनमें आपको उनकी मूल पहचान के साथ-साथ कमोबेश अन्य क्रॉस संस्कृतियों के बहुधा रंग-शेड देखने को मिलते हैं। उसका दृष्टिकोण अब अधिकांश तआस्सुबी और संप्रदायवादी नहीं रहा। उसने अपने आध्यात्मिक जातीय अंतरर्जातीय मूल्यों के साथ-साथ यथाशक्ति समानुपात रीति से अन्य संस्कृतियों के प्रवासी मूल्य को भी समुचित ढंग से ग्रहण किया है। सीता, अनुसूया और गार्गी के आनुवांशिक मूल से उठी हुई ये महिलाएं आज देशांतर सराहना की पात्र भी हैं। मगर साथ ही यह बड़ी चिंता की बात है कि हमारी बहुत-सी बहनें और माताएं शिक्षा और भौतिक विकास में आज भी पिछड़ी हुई हैं। अतः समसामयिक शासन का यह दायित्व है कि वह उनके समग्र विकास और कल्याण के लिए योजनाबद्ध रूप से कार्य करे। देश की लगभग एक तिहाई नारी आबादी अपने भौतिक अंधेरों और दुश्वारियों से मुक्त नहीं हुई है। उनके लिए पारिवारिक और वर्गीय स्तर पर रचनात्मक कार्य होने चाहिए ताकि आने वाले वर्षों में तेज़ी से उनका सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उत्थान किया जा सके और उन्हें देश के लोक जीवन की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके। जातीय विषमता दूर हो तभी हम राष्ट्रीय स्तर के प्रजातंत्र को सुदृढ़ और अक्षुण्ण बना सकेंगे।

भारतीय महिलाएं आज बहुरंगी देशिक संस्कृति का एक अनुपम उदाहरण हैं। उनमें आपको उनकी मूल पहचान के साथ- साथ कमोबेश अन्य क्रॉस संस्कृतियों के बहुधा रंग-शेड देखने को मिलते हैं। उसका दृष्टिकोण अब अधिकांश तआस्सुबी और संप्रदायवादी नहीं रहा। उसने अपने आध्यात्मिक जातीय अंतर्जातीय मूल्यों के साथ-साथ यथाशक्ति समानुपात रीति से अन्य संस्कृतियों के प्रवासी मूल्य को भी समुचित ढंग से ग्रहण किया है।

यह एक बड़ी चिंता का विषय है कि स्त्रियों के प्रति अपराधों में भी इन दिनों अभूतपूर्व इजाफ़ा हुआ है। सामूहिक बलात्कार और हत्याएं रोज़-ब-रोज़ घटित हो रही हैं। इस पर भी पुलिस का आरक्षी शिकंजा और कानून की गिरफ्त भी मज़बूत होनी चाहिए। महज़ मीडिया में इन घटनाओं का प्रचार-प्रसार काफी नहीं है। मुझे मालूम नहीं शासक वर्ग, प्रशासनिक अधिकारी, सिक्योरिटी स्टाफ और स्वयं एनजीओ संगठन इसके अवरोध और नियंत्रण के लिए क्या कर रहे हैं। चिंता इस बात की है कि अपराधकर्ताओं में न केवल प्रोफेशनल अपराधी बल्कि युवा और नाबालिग आयु के लड़के भी इन जघन्य अपराधों के बाइस बनते जा रहे हैं। इन अपराधों पर कड़ी रोक लगनी चाहिए और इनके पक्ष में राष्ट्रीय स्तर पर अभियान भी चलाए जाएं तो बेहतर होगा।

ई-मीडिया की तसवीरों और फिल्मी दुनिया की कारकर्दगी के ज़रिए समाज के युवाओं के लिए भी एक ऐसा कल्चर परोसा जा रहा है जिसने हमारे परम्परागत स्वस्थ सामजिक मूल्यों को नुकसान पहुंचाया है। इसका विरोध आवश्यकता अनुसार न केवल एनजीओज़ करें अपितु सरकार द्वारा स्थापित सेंसर और कानून भी इस ओर ध्यान दे। प्रजातंत्र और समाजवादी माहौल में रहने-जीने का मतलब यह हरगिज़ नहीं कि मीडिया और सिनेमा और फैशन शोज़ नैतिक बातों का खयाल न रखते हुए बेबाक बने रहें।

ऐसे सकारात्मक उपायों को व्यापक सामाजिक स्तर पर फरोग दिया जाना चाहिए तभी हम एक गतिशील और प्रगतिशील राष्ट्रीय समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

कुछ संस्थाएं इस संदर्भ में एक व्यापक सामाजिक स्तर पर इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आगे आई हैं।

नंदी ग्राम, सुबाथू रोड, धर्मपुर,
जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश-173 209

हिमप्रस्थ में ऊना जिला विशेषांक

'हिमप्रस्थ' मासिक पत्रिका में शीघ्र ही ऊना जिला विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। अंक में विशेष रूप से ऊना जिला का इतिहास, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक महत्त्व, देव संस्कृति, मेले व त्योहार, लोक साहित्य एवं संस्कृति, पर्यटन, ऐतिहासिक एवं पौराणिक धार्मिक स्थल तथा विकास इत्यादि पर सामग्री प्रकाशित की जाएगी। इस अंक के लिए आपका सहयोग अपेक्षित है। विस्तृत जानकारी के लिए गिरिराज/हिमप्रस्थ कार्यालय में सम्पर्क करें।

- वरिष्ठ सम्पादक

आलेख

शब्दों की दुनिया से जूझती समकालीन हिंदी कविता

● डॉ. सत्यनारायण स्नेही

वे शब्द जो मुझे दादा से मिले
उन में से कुछ सुरक्षित हैं आज भी मेरे पास
शब्द जो मुझे मेरी मां से मिले
मैं भूल चुका हूं सारे के सारे
वे शब्द जो सीखे मैंने पाठशाला में
सबके सब बो दिये रोटी के लिए
वे शब्द जिन्होंने आज गिरफ्तार कर लिया है मुझे
वे शब्द न मेरी मां के हैं
न मेरी पाठशाला के
मैं डरता हूं जिन से बार-बार
मेरा बच्चा खेल रहा है उनसे
लगातार

भाषा का महत्त्वपूर्ण उपकरण है शब्द। शब्दों द्वारा ही भाषा परिपूर्ण होती है, शब्दों के बिना कविता का कोई अस्तित्व नहीं होता है। भाषा में शब्द किसी-न-किसी अर्थ एवं अवधारणा के प्रतीक होते हैं। ये अर्थ अधिकांशतः समाज स्वीकृति होते हैं। आज वैश्वीकरण के दौर में बाजारवादी नीतियों के तहत शब्द अपने मूल अर्थ से विलग होने लगते हैं। समकालीन कविता में शब्द और उसके प्रयोग से निमित भाषा और बदलती अर्थ छवियों को बेहद संजीदगी के साथ व्यक्त किया गया है। समकालीन कवि अपनी चिंता व्यक्त करता है कि जो संस्कार पूर्वजों से मिले, हमने अपनी पीढ़ी में कुछ एक सजोंये, जिससे हम जीवन की वास्तविकता को समझ पाये हमने ऐसी शिक्षा प्राप्त की है जिससे हम अपना और परिवार का भरण पोषण कर पाये लेकिन सूचना प्रोद्योगिकी एंव टैक्नोलोजी के इस युग में ये तंत्र जिस तरह से हमारे ऊपर हावी हो चुका है और आने वाली पीढ़ी की जो शिक्षा व्यवस्था है, उसमें न संस्कार होंगे न मानवीय मूल्य और न ही मनुष्य जीवन के सलीके।

वास्तव में इस देश में जब भी किसी बच्चे की औपचारिक शिक्षा प्रारम्भ की जाती है तो पहले वर्णमाला उसके बाद शब्द और भाषा सीखाई जाती है। भाषा द्वारा ही समग्र अवधारणाओं की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति होती है। हमारी शिक्षा एवं संस्कारों का आधार भी भाषा है। भाषा के द्वारा ही हम जन्म से मृत्यु पर्यन्त रोते है हंसते हैं, बतियाते हैं। सुख और दुख को साझा करते है। भाषा ही ऐसा माध्यम है जो हमें एक दूसरे को अपना होने का एहसास करवा सकता है। इसी के द्वारा पीढ़ियों में परम्पराएं एवं संस्कार जीवित रहते हैं। लेकिन आज की व्यवस्था में अर्थतन्त्र हावी है। मनुष्य के प्रतिस्पर्धा के स्थान पर ईर्ष्या बढ़ गई है। हम आने वाली पीढ़ी को सिर्फ पैसे कमाने वाली मशीन बनाना चाहते हैं। पहले शिक्षा एक अच्छे नागरिक बनाने के लिए दी जाती है पढ़ा लिखा व्यक्ति अथवा समाज सबसे प्रबुद्ध विवेकशील एवं संवेदनशील होता था वहीं सभ्य एवं सुसंस्कृत होता था लेकिन आज की विकसित एवं परिवर्तित व्यवस्था में ऐसा नहीं है। आज हम वह पढ़ा रहे है जिसमें टैक्नोलॉजी है, कम्पयूटर, मोबाइल, ने चिंतनशीलता के स्थान पर तनाव और दबाव बढ़ा दिया है। आज का शिक्षित व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर विकसित नहीं होता। अपितु उसे तकनीकी स्तर पर विकसित होने की आवश्यकता है। उसे शब्दों के अर्थ गाम्भीरय स्थान पर सिर्फ प्रयोग को जानना है और वह भी वही शब्द सीखेगा जिसका उपयोग उसके नवसृजित कार्य व्यवसाय में होगा। उसकी भाषा भी तदनुरूप प्रयुक्त होती है। इस नवीन आयातित शिक्षा पद्धति में न संस्कारों के शब्द है, न भाषा, न ही अवधारणा। यहां मनुष्य जीवन के मायने बदल जाते हैं। संवेदना, सहानुभूति आत्मीयता, जज्बात नैतिकता, हमदर्दी जैसे शब्द इस शिक्षा व्यवस्था में कहीं पर नहीं है, दादा से जो शब्द मिलते है वह महज प्रयोग के लिए नहीं होते, उसमें जीवन की दशा एवं दिशा निर्दिष्ट होती है। माता-पिता उन्हीं संस्कारों से अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करते हैं। मातृ वात्सल्य से ही रिश्तों की बुनियाद रखी जाती है। यहीं से आत्मीयता का अहसास शुरू होता है। जिन्हें हम आयातित शब्दों एवं आरोपित भाषा द्वारा खण्डित कर रहे हैं।

बेटा, वह मेरे हंसने की रोने की भाषा है
जागने की, सोने की भाषा है

मैंने तुम्हारी जेबों में बिजूका के पैरों वाली
जो भाषा भर दी है
वह डराने धमकाने की चीज है
तुम्हारे सपनों की भाषा नहीं [2]

इंटरनेट के इस युग में बच्चों से बचपन छीन लिया है। न माता पिता के पास कथा-कहानी सुनाने का समय है और न ही बच्चों के पास सुनने का। इंटरनेट से उन्हें पूरी दुनिया की जानकारी प्राप्त हो रही हैं। प्रत्येक प्रश्न के समाधान मिल रहे हैं समग्र जीवन के मूल प्रश्नों का समाधान इस शिक्षा एवं भाषा में नहीं है-

ऐसे समय में जब तमाम स्कूल पढ़ा रहे हैं
तराजू की वर्णमाला
फिर कौन याद करेगा नीम का पेड़
कौन पूछेगा गाँव किधर है बापू [3]

आज वह भाषा खत्म हो रही है जिससे रिश्तों की महक आती है जिसमें सुख दुःख की अनुभूति होती है। संचार के इस युग में समग्र तकनीक अंग्रेजी आधारित है इसलिए हमारी समूची शिक्षा का आधार तकनीकी रूप से सक्षम बनाने का है। ये तभी सम्भव हो सकता है यदि हमारी अंग्रेजी मजबूत होगी। इससे हम वैश्विक संदर्भ को समझ सकते है समृद्व और सम्पन्न हो सकते है। कम्पयूटर और समूचे तन्त्र को जान सकते है। परन्तु अपने मूल उत्स, और अस्मिता की पहचान नहीं हो सकती। सूचना तंत्र की गिरफ्त में आया व्यक्ति अपनी असलियत को नहीं जान पाता है।
-

दादी नहीं जानती
किले और कलम की भाषा के बीच से आदमी
जब लौटता है गांव की ओर
वह भूल जाता है पूरी तरह
हल और हेंगे की भाषा
उसके पास होती है डरावने सपनों की एलबम
देश-विदेश के खोटे सिक्के
जिनसे नहीं खरीदे जा सकते सुन्दर सपने [4]

समकालीन हिन्दी कविता में अलग-अलग दृष्टिकोण से इस सत्य को उद्घाटित किया है कि आज लोगों के जीवन में जो बदलाव आ रहा हैं अपने को आधुनिक सभ्य, सम्पन्न बनने की होड़ में सबसे पहले भाषा में परिवर्तन परिलक्षित होता है उसके बाद चाल-चलन रीति-रिवाज, वेश-भूषा में बदलाव आ रहा है। विकास एवं परिवर्तन की इस प्रक्रिया में भारत की ही नहीं संसार की अनेक भाषाएं अपना अस्तित्व खो रही है। 'एटलस ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेजेज, हेड लैंग्वेजेज, रेड बुक आदि पुस्तकों के आधार पर कहा जा सकता है कि उतरी अमेरिका के कनाडा और यूनाइटेड स्टेट्स में सौ साल पहले रेड इंडियन और एस्किमों की भाषाओं के साथ कुछ 187 भाषाएं थी, उनमें से 38 भाषाओं के बचने की खबर चिंतित करने वाली है। अलास्का में 20 भाषाएं थी 10 बची हैं। इसी तरह आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की भाषाएं हर रोज मर रही है। वहां 300 में से 65 भाषाएं किसी तरह अपनी सांसे चला रही है। कोई जानता है कि क्या इंग्लैण्ड में भी कई भाषाएं थी जिनमें आज केवल अंग्रेजी बची है। 5 अंग्रेजी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित हो रही है। परन्तु कई भाषाएं विलुप्त हो गई है कई विलुप्ति के कगार पर है। भाषा विलुप्ति और भाषा विकृति के वैसे तो कई कारण हो सकते है। पर आज के संदर्भ में भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के मध्य जीवन स्तर को बेहतर करने की ख्वाहिश में लागों द्वारा मूल स्थान का त्याग, गाँव से बाहर की तरफ पलायन, व्यावसायिक शिक्षा की ओर अत्यधिक झुकाव से भाषाओं के अस्तित्व पर संकट पैदा हुआ है।

आज अंग्रेजी का वर्चस्व पूरी दुनिया में है। अंग्रेजी अतंर्राष्ट्रीय स्तर की भाषा है। कम्पयूटर, मोबाइल और इंटरनेट ऐसे संचार माध्यम है जिनमें अंग्रेजी का वर्चस्व है। तो अंतर्राष्ट्रीय बाजार और संचार माध्यम के जरिये अंग्रेजी विश्व के कोने-कोने में पहुंच गई है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार और संचार क्रांति के बढ़ते दायरे के कारण अंग्रेजी वर्चस्व की भाषा बन गई है। अंग्रेजी आज की युवा पीढ़ी की अनिवार्य भाषा होने के साथ-साथ पहली भाषा की पंसद बनती जा रही है। कारण यह है कि इस युवा पीढ़ी को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रलोभन अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के आकर्षक और हमारी तदनुरूप शिक्षा पद्धति। हमारा देश बहुभाषिक चारित्र वाला है। ऐसी स्थिति में जो भाषा पनप रही है, वह अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के मेल से उत्पन्न खिचड़ी भाषा है। जैसे, आज हिन्दी और अंग्रेजी के सम्मिश्रण से जो नयी भाषा कॉन्वेंट-शिक्षित युवा-पीढ़ी के बीच लोक-प्रिय हो उठी है, जिसे सुविधा के लिए 'हिग्लिश' भी कहा जाता है। ऐसे में लोक-भाषाएं, जन भाषाएं, मातृभाषाएं विनष्टि की स्थिति में है।

भाषा महज सूचनाओं का माध्यम भर नहीं हैं। वह मनुष्य और मनुष्यता की पहचान है। भाषा के लुप्त होने की पीड़ा झेलता कवि कहता है कि आज भी अनेक जानकारियां दूसरी भाषाओं में मौजूद है। अपनी भाषा एवं शब्दावली उतनी समृद्व नहीं जितनी दूसरी भाषा है-

हम स्वप्न को डरे हुए देखते हैं टूटते उल्का पिंडों की तरह
उस भाषा के अन्तरिक्ष से
लुप्त होते चले जाते हैं एक एक कर सारे नक्षत्र
भाषा जिसमें सिर्फ़ कूल्हे मटकाने और स्त्रियों को
अपनी छाती हिलाने की छूट है
जिसमें दंडनीय है विज्ञान और अर्थशास्त्र और शासन से
सम्बन्धित विमर्श
प्रतिबन्धित हैं जिसमें ज्ञान और सूचना की प्रणालियां वर्जित
हैं विचार[6]

कोई भी भाषा सीखना बुरा नहीं है, बुरा है तो अपनी भाषा की उपेक्षा कर बाजारवाद और आधुनिकता की चकाचौंध में पड़कर अपनी सांस्कृतिक और भाषायी पहचान को खो देना। क्योंकि इसी पर किसी देश की अस्मिता निर्भर करती है। समाज के इस बदलते परिदृश्य में समकालीन कवि अपनी भाषा की अवहेलना करने वालों को सचेत करता हुआ कहता है -

एक भाषा है जिसे बोलते वैज्ञानिक और समाजविद्
और तीसरे दर्जे के जोकर
और हमारे समय की सम्मानित वेश्याएं और क्रांतिकारी शरमाते हैं जिसके व्याकरण और हिज्जों की भयावह भूलें ही
कुल शील, वर्ग और नस्ल की श्रेष्ठता प्रमाणित करती हैं[7]

अपने जीने-मरने, रोने-हंसने, सुख-दुःख की अभिव्यक्ति की भाषा की स्थिति को बयान करती है यें पंक्तियां-

अपनी देह और आत्मा के घावों को और तो और
अपने बच्चों और पत्नी तक से छुपाता
राजधानी में कोई कवि जिस भाषा के अन्धकार में
दिनभर के अपमान और थोड़े से आचार के साथ
खाता है पिछले रोज की बची हुई रोटियां
और मृत्यु के बाद परिश्रमिक भेजने वाले किसी राष्ट्रीय अखबार या मुनाफाखोर प्रकाशक के लिए
तैयार करता है एक और पांडुलिपि[8]

समकालीन कवि जैसे विलुप्त होते पेड़-पौधों और पशु पक्षियों की प्रजातियों को बचाने का पक्षधर है, उसी तरह विलुप्त होती बोलियों, भाषाओं को बचाने का पक्षधर है। बहुभाषी समाज वाले राष्ट्र के हित में यही है। समकालीन कवि जब देखता है कि भाषाओं का अपना स्वभाव तिरोहित होता जा रहा है, संचार माध्यम की प्रमुख भाषा अंग्रेजी में, भाषाओं के शाब्दिक अर्थ उतरते जा रहे हों बाजार में, भाषाओं की प्रतीकात्मकता समाती जा रही हो विज्ञापन की खोल में तो कवि चुप नहीं रह पाता। कात्यायनी की वाणी अभिशाप बन कर फूट पड़ती है- वे जो भाषा को बदलकर, शब्दों को मनमाने अर्थ देकर हमसे चीजों की पहचान छीनने की कोशिश कर रहे है, इतिहास उन्हें भीषण शाप देगा।[9] इसी प्रकार निर्मला पुलुत ने 'मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में' कविता में अपनी भाषा के विलोपन का डर और तथाकथित श्रेष्ठता का उल्लेख है-

मजाक उड़ाते हैं हमारी भाषा का
हमारे चाल-चलन रीति-रिवाज
कुछ भी पंसद नहीं उन्हें
पसंद नहीं है, हमारा पहनावा-ओढ़ावा[10]

कवयित्री के मत में स्थिति ऐसे बन गई है कि हमें यदि सभ्य बनना है तो उनकी भाषा को सीखना होगा, उन्हीं की तरह बतियाना होगा। उनकी भाषा से अभिप्राय अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजियत से है जिसमें हमारा रहन-सहन, मान-मर्यादाएं, रीत-रस्म, परम्पराएं मान्यताएं और वेश-भूषा अपना न होकर पाश्चात्य प्रभावित हो उनका ये कवितांश द्रष्टव्य है-

सभ्य होने के लिए जरूरी है उनकी भाषा सीखना
उनकी तरह बोलना-बतियाना
उठना-बैठना
जरूरी है सभ्य होने के लिए उनकी तरह पहनना-ओढ़ना[11]

आज जिस तरह से सभ्यता के प्रतिमान बदले हैं इससे तो यही प्रतीत होता है कि आने वाले समय में न हमारी ये भाषा रहेगी और नहीं हमारी परम्पराएं बचेगी। वह भाषा जिसमें हमारे जीवन की धड़कनें विद्यमान है हमारी रीत-रस्म एवं मान्यताएं जिसमें हमारी अस्मिता और पहचान है। सभ्यता की बदली प्राथमिकताओं में ये सब बदल रहा है। भाषा ही वह माध्यम है जो एक आदमी को दूसरे आदमी के साथ जोड़ता है। इसी के माध्यम से एक पीढ़ी के संस्कार दूसरी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रहते हैं। भाषा की इस उपेक्षा से पिछली पीढ़ी के साथ सम्पर्क खत्म हो जाएगा। जिसमें जीवन की मार्मिक अनुभूतियां, संवेदनाएं, और जज्बात है वो शब्द और भाषा भी खत्म हो जाएगी।

समकालीन कविता युग और समय की समस्याओं को विशेष रूप से रेखांकित करती है। वर्तमान समय के संदर्भ में भाषा के स्वरूप और उसकी स्थिति पर समकालीन कविता में विचार व्यक्त किया गया है क्योंकि समकालीन कवि इसे आज एक नैतिक दायित्व के रूप में समझा रहे हैं। इसलिए कवियों ने समग्र सामाजिक विकृतियों पर बेबाकी से प्रहार किया है।

आज की आवश्यताओं को पूरा करने और जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए आदमी इतना व्यस्त है कि उसके पास किसी के लिए कोई समय नहीं है एक तरफ वह टैक्नॉलॉजी का गुलाम है दूसरी ओर आत्मीय अभिव्यक्ति का अभाव तभी तो लम्बे-लम्बे पत्रों की आत्मीयता से निकली भावनात्मक भाषा आज लुप्त हो रही है-प्रभा मजूमदार के शब्दों में-

चार पन्नों के पत्र
ई मेल की
दो लाईनों में
सिमटने लगे
या दो साल के अन्तराल में
एकाध फोन काल में [12]

संचार के इस युग में भावनाओं का संचार खत्म हो गया है। वह भाषा खत्म हो रही है जो भावनात्मकता तथा रिश्तों की अहमियत को दर्शाती है। कवि कुमार कृष्ण ने इस सच को 'गांव किधर है कविता द्वारा अवगत करवाया है।

क्या तुम भी बोल सकते हो दादी की भाषा?
बच्चे ने एक दुकान की ओर इशारा किया

पापा उधर देखो
शायद उस सब्जी बेचने वाली औरत के पास बची हो
थोड़ी बहुत
क्या करेंगे आप उस भाषा का?[13]

आज के समय में सिर्फ मतलब से ही एक दूसरे से बातचीत होती है वह भी कार्य-व्यवसाय के विषय में। प्यार, मुहब्बत सुख-दुःख, सहानुभूति की न तो भाषा है और नहीं भावनाएं। व्यक्ति पूर्णतया आत्म केन्द्रित हो गया है लफ्जों की आलमारियां खोलने वाला आदमी' कविता में कवि इस चिंता को व्यक्त करता है कि शब्द, कविता एवं पुस्तकें ही भावी-पीढ़ी को संस्कारित कर सकती है अन्यथा मनुष्य -मनुष्य से पूरी तरह पृथक हो जाएगा। रिश्तों के कोई मायने नहीं बचेंगे।

जिस दिन हो जाएंगी बन्द
लफ्जों की अलमारियां
बंजर हो जाएगी उस दिन पूरी पृथ्वी
कोई नहीं खटखटाएगा किसी का दरवाजा[14]

इंटरनेट के इस युग में पुस्तकों की उपयोगिता कम हो गई है। लेकिन ये सच है कि ज्ञान का जो संचय पुस्तकों में हो सकता है वह टैक्नालॉजी शायद उस तरह से न रख सके। जो संवेदनाएं, एवं अनुभूतियां पीढ़ियों में संचारित एवं संप्रेषित होती है वह तकनीक द्वारा सम्भव नहीं है। इस स्थिति को इंगित करते शब्दों के बीज' कविता में कवि कहता है।

एक दिन नहीं रहेगी अलमारियां
तब कहां रहेंगे शब्द
कहां रहेगी पिता की उम्मीद
मां के आंसू
पत्नी और बच्चों के सपने[15]

इस स्थिति से चिंतित कवि भाषा एवं शब्दों को बचाने का आग्रह करता है कि यदि संवेदनाएं होगी तभी मनुष्यता बचेगी, रिश्ते रहेंगे, हमदर्दी रहेगी जीवन का महत्व रहेगा

यदि हो सके तो बेटा बचा लेना
दो-चार शब्दों के बीज
हो सके तो बचा लेना
बांझ होने से पृथ्वी
हो सके तो बचा लेना शब्द
जिनसे झरते रहें
रिश्तों के छोटे-छोटे फल[16]

आज पहले जैसे परिवार, रिश्ते, सदभावना, नहीं है, लोगों में एकाकीपन बढ़ा है, परिवार की अवधारणा ही बदलती नजर आ रही है। बुर्जुग उपेक्षा के शिकार है। उनके अनुभव, शिक्षा एवं प्रेरणाओं का नई पीढ़ी में कोई मतलब नहीं बचा है। ऐसे हालात में कवि की ये पंक्तियां अवलोकनीय है

वक्त बहुत कम है-
कविता की जेबों में जल्दी से भर लो
फटे-पुराने रिश्ते
नरगिस के फूलों की खुशबू
चूड़ियों की खनखनाहट
बैलों की घंटियां
चांद तारों की कहानियां
हो सके तो छुपा लो कहीं भी
दादी का, नानी का बटुआ[17]

समकालीन हिन्दी कविता धीरे-धीरे हमारे जीवन से दूर होती अनिवार्य चीजों को बचाने की कवायद है जिससे मनुष्य बेहतर जीवन जी सके। भाषा मनुष्य के चिन्तन चेतना, आचार-व्यवहार एंव संस्कार का प्रतीक है। आदमी जिस तरह की भाषा प्रयोग करता है उससे उसकी सोच एवं मानसिकता परिलक्षित होती है। उसकी शब्दावली उसके व्यक्तित्व का परिचालक होती है अपनी पारंपरिक पद्धतियों, प्रतिमानों और भाषा को दर किनार कर भूमण्डलीकरण की इस दौड़ में सिर्फ व्यवसायिक होना समाज एवं मनुष्य दोनों के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। सूचना और संचार की गिरफ्त में आया आदमी उसके अनुप्रयोग तक सीमित है। संचार की एक भाषा सभी भाषाओं पर हावी होती जा रही है और भाषागत विविधता नष्ट होने की ओर है। समकालीन कवि ये भी चाहता है, कि दुनिया में ऐसी भाषा फैले जो वैविध्यपूर्ण हो, जिसमें जीवन के सभी रंग सुरक्षित रहे।

ऐसी हो भाषा
कि उसमें हों लाखों के बोलने के ढंग
कि उसमें हो पूरे जीवन का रंग [18]

इसका एक कारण यह भी है कि हमारी संकुचित मानसिक बुनावट है। हमें आज अपने संस्कार परम्पराएं एंव जीवन शैली तुच्छ लगती है जबकि पाश्चात्य सभ्यता का आकर्षण एंव प्रवेश तीव्र गति से बढ़ रहा है। हमें अपने तौर-तरीके बुरे और उनके अच्छे लग रहे हैं। हम लगातार उसी का अनुगमन कर रहे हैं। इसी चिंता में कवि देखता है कि शब्दों की जगह चमकदार और चौंधाती वस्तुओं ने ले ली है यह वर्तमान का सच है- यही है हमारे समय का एक सबसे पूरा बिंब और एक दिलचस्प प्रहसन भी

कि जो जगह भरी होती थी कभी खूबसूरत शब्दों से
वहां अब चमकदार जूते भरे है[19]

वस्तुतः समकालीन कवि के लिए शब्द का महत्त्व अन्न से कम नहीं है। एकान्त श्रीवास्तव ने अपने पहले कविता संग्रह का नाम ही रखा-'अन्न है मेरे शब्द'

कवि जब शब्द और भाषा पर उपभोक्तावादी संस्कृति द्वारा हमले होते देखता है, तो उसका सृजनात्मक पक्ष इस तरह प्रकट करता है-

अन्न है मेरे शब्द
पृथ्वी की उर्वरता के आदिम साक्ष्य
जन्म लेना चाहते हैं बार-बार
संसार को बचाए रखने की
पहली और आखिर इच्छा बनकर [20]

कवि शब्दों मे उर्जा भर कर भाषा को नया जीवन प्रदान करता है जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति में शब्द दोहन के शिकार बन जाते हैं और संस्कारित तत्व क्षरित होने लगता है। भाषा की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा होती है और शब्द ध्वनियों के समूह से आकार ग्रहण करते है। परन्तु ध्वनि-समुच्चय से ध्वनियां धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। वर्तमान टैक्नालॉजी मोबाइल, वॉटसएप, फेसबुक, ईमेल द्वारा जो संदेश संप्रेषित किये जा रहे है उसकी भाषा, लिपि और शब्दों का स्वरूप पूरी तरह से विकृत हो गया है। वह वो शब्दावली है जिसे आम पावक न तो पढ़ सकता है और न ही समझ सकता है। जैसी विकृति ये नवीन शब्दावली है वैसे ही इसकी अर्थ संप्रेषणीयता, जो प्रतिदिन कोई न कोई नए संदर्भों का उद्घाटन करती है। समकालीन कवि ने भाषा और लिपि में विलोपन और विकृतियों पर अपनी चिंता व्यक्त की है। प्रस्तुत अंश में लुप्त होते चंद्र बिन्दु के विषय में कवि कहता है-

मुझे चंद्रबिन्दु की चिंता है
लिपि को सुदूर जन तक पसारने वाले ये छापे
खाने रौंद जाएंगे क्या-
देवनागरी लिपि की सर्वाधिक सुन्दर सुघड़ कोमल आकृति
यंत्र वक्ष में
न रहेगी चंद्रबिन्दु के लिए जगह
सूरज की पीठ पर छापने वाले अखबार
छापेगे चंद्रबिन्दु के बगैर
बड़ी होगी जो पीढ़ी बेटे-बेटियों की
अनुस्वार के उदित गोलाकार में चंद्रबिन्दु की आस्ताभा नहीं पहचानेगी [21]

इसी तरह 'मूर्धन्य 'ष' के लिए एक विदा गीत' कवित में ध्वनि-समुच्चय से लुप्त होती ध्वनियों का उल्लेख करता है -

बेचारा मूर्धन्य 'ष'
जिह्वा से जो गिर गया रास्ते में
बोली से बिछड़ गया
टोली से फिसल गया
डूब गया अन्धेरे में [22]

समकालीन हिन्दी कवि प्रचलन से बाहर हो कर लुप्त होती ध्वनियों के इस संकट से परिचित हैं इसी लिए आह्वान करता हुआ कहता है-

चिंता करो मूर्धन्य 'ष' की
इसी तरह बचा सको तो बचा लो 'ड'
देखा, कौन चुरा कर लिये जा रहा है खड़ी पाई
और नागरी के सारे अंक
जाने कहां चला गया ऋषियों का 'ऋ' [23]

आज हमारे समक्ष जैसे-जैसे नई चीजें आ रही है उसी तरह नित नई संकल्पनाए एंव अवधारणाएं बन रही हैं, वैसे ही तदनुरूप शब्दावली। पुरानी संस्कृति मान्यताएं एंव अवधारणाएं खत्म हो रही हैं। यहां तक कि जैसे कई तरह के पेड़-पौधों, अनाजों की प्रजातियां और कई मनुष्य के उपयोग की वस्तुएं अब नष्ट हो गई है न वह चीजें हैं न हीं उसकी पहचान के लिए प्रयुक्त शब्द। आने वाले समय में यह स्थिति और विकराल होती जा रही है। अगली पीढ़ी पिछली पीढ़ी के समय की बहुत सारी चीजों और अवधारणाओं से अनभिज्ञ है। नई और आत्याधुनिक वस्तुओं के उपयोग एंव अपनाने में कोई मनाही नहीं है परन्तु इन सांस्कृतिक चीजों को लुप्त होने से बचाना जरूरी है ताकि हमारी संस्कृति जिन्दा रहे, भाषा भी जिंदा रहे जो इन चीजों का बोध कराए। विकास और परिवर्तन के इस दौर में कवि विद्वान लोगों से प्रश्न करता है-

मैं कहां पर टांग दूँ अपने दादा की मिरजई
किस संग्रहालय को भेजूं पिता का बसूला
मां का कर धन और बहन के बिछुए में
किस सरकार को सौंपू हिफाजत के लिए [24]

विदेशी चीजों के आकर्षण और उनके प्रति लोगों के झुकाव को देखकर अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने की वकालत करते हुए कवि उदय प्रकाश कहते है-

सरदार जी, आप तो बचाइये अपनी पगड़ी
और पंजाब का टपा
मूल्ला जी उर्दू के बाद आप फिक्र करे कोरमे के शोरबे का जायका बचाने की [25]

समकालीन कवित शब्दों और भाषा को सही अर्थवत्ता और सही स्थान दिलाने की हिमायती है। शब्दों द्वारा व्यक्त भाषा का गहरा सम्बन्ध समाज तथा व्यक्ति की अपनी रुचि और संस्कार के साथ रहता है। भाषा ही एक दूसरे को करीब लाती है। तभी तो वह जीवन की समग्र संकल्पनाओं, अवधारणाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए शब्दों को बचाने की वकालत करता है। कवि अशोक वाजपेयी 'शब्द गिरने से बचाते हैं' कविता में ऐसा ही कहते प्रतीत होते हैं कि शब्द हमेशा पथ प्रदर्शन करते हैं -

शब्द गिरने से बचाते हैं-
वे भारहीन गिरते हैं
अन्तः करण पर ----
कभी-कभी जब हम गलत रास्ते पर होते हैं
शब्द जूतों के अन्दर अचानक उभर आई
कील की तरह गड़ते हैं -

वे हमें रोक न सके
पर इतना जतला जरूर देते हैं
कि हम किसी और रास्ते भी जा सकते हैं [26]

इसी तरह कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी शब्दों की अहमियत को बताते हैं 'शब्द' कविता का यह अंश अवलोकनीय है-

शब्द सृष्टि की कुंजी
बोलना होठों की कसरत नहीं
लिखना उंगलियों का खेल नहीं
शब्द होने का सबूत है
वह विराट मौन को तोड़ता है
एक निबिड़ अन्धकार से उबारता है [27]

साहित्य का जन्म ही शब्द ग्रहण में होता है रचनाकार अपने अनुभवों की साहित्यिक अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा करता है। कवि अपनी अनुभूति को काव्यानुभूति बनाने के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त शब्दों की खोज करता कविता की सर्वाधिक सार्थवाही शक्ति शब्द है। कविता चाहे किसी भी भावना की अनुवृति हो किसी उतेजना की अभिव्यक्ति को किन्तु सर्वप्रथम वह अपने मूल रूप में शब्द जीवी है। समकालीन कविता में शब्दों की सार्थकता उसकी अर्थ छवियों में है। शब्दों में मनुष्य की आत्मा है शब्दों द्वारा ही व्यक्ति के अन्तःकरण की अनुभूति को व्यक्त किया जा सकता है। यदि भाषा में सत्यानुभूति को व्यक्त करने योग्य शब्द नहीं है तो मानव जीवन में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। एकान्त श्रीवास्तव की कविता का ये अंश उल्लेखनीय है -

शब्दों में नहीं है।
टगर तुम्हारी आत्मा की झिलमिलाहट
तो वे झूठे हैं
तुम्हारे प्यार के रंग
तुम्हारे अंतस के झंझावात
तुम्हारे दुख की परछाइयां
तुम्हारे कमीज की कॉलर पर जमी धूल
अगर शब्दों में नहीं है-
आईने हैं शब्द
इनके सामने खड़े हो और देखो
शब्दों में नहीं है
अगर तुम्हारी आत्मा की झिलमिलाहट [28]

आज सूचना और प्रौद्योगिकी के जिस युग में हम जी रहे हैं जहां भाषा एंव संचार के नित नए अनुप्रयोग हो रहें हैं नई नई संकल्पनाएं हमारे जीवन में उभर कर आ रही है। उससे हमें शब्द ही उभार सकते हैं।

कवि कुमार कृष्ण पूरे विश्वास के साथ 'कविता की कोख' कविता में कहते हैं -

उसे पूरा यकीन है
नहीं घिसते शब्द, नहीं टूटते शब्द
मरते नहीं शब्द, शब्द नहीं होते क्षीण
कविता की कोख से बार बार जन्म लेने पर
हृष्ट-पुष्ट होते है शब्द [29]

इसीलिए कवि कुमार कृष्ण शब्दों द्वारा व्यक्त ऐसी भाषा में कविता लिखने की हिमायत करते हैं, जो हृदय संवाद कर सके जिसमें रिश्तों की गरमाहट, मानवीय मूल्यों, लोक वेदना और लोक चेतना का समावेश हो-

गन्ने की तरह गांठ दार
अमरूद की तरह अनगिनत बीज वाली
लिखो तुम कविताएं बेशुमार
वर्णमाला के अक्षरों में
अ से ज्ञ तक
बचा लो मेरे दोस्त
पृथ्वी की मिठास 30

इससे आगे अशोक वाजपेयी के शब्दों में सार्थक कविता वही है जिसमें इन सब चीजों का समावेश होगा-

बहुत सारा जीवन, पूर्वज,
प्रेम, आंसू, अपमान
लोगों का शोरगुल, अरण्य का एकान्त,
भाषा का घर, लय का अंतरिक्ष [31]

अतएव ऐसी भाषा का प्रयोग हो जिससे हम अपने आप को पहचान सके। समकालीन कवि अपनी भाषा की दुर्दशा देखकर कभी दुख व्यक्त करते हैं, कभी आक्रोश प्रकट करते है, कभी निराशा का भाव प्रकट करते हैं, कभी भाषा की विडम्बना की ओर संकेत करते हैं, कभी दुरुस्त भाषा का सपना देखते हैं। समकालीन कविता अपने समय के प्रति सचेत है, अपने युग तथा परिवेश के प्रति सजग हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में तीव्र हुए विभिन्न समकालीन प्रश्नों से दो चार होते हुए यह कविता मानवता के पक्ष से अपना बयान प्रस्तुत करती हैं। भूमण्डलीकरण और उपभोक्तावादी और में भाषा के अस्तित्व पर संकट छा गया है। हम अपनी संस्कृति को भूलकर अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। यह स्थिति निरन्तर भयानक होती जा रही है। आज हम आर्थिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से गुलामी की ओ बढ़ रहे हैं। विदेशी निर्माण, और विदेशी आचरण की तरफ हमारा आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। बाहरी संस्कृति का सर्वप्रथम प्रभाव हमारी सोच, समझ और अभिव्यक्ति पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप सबसे पहले हमारी भाषा विकृत होती हैं हमारी शब्दावली बदलती है और हमारे संस्कार क्षीण होते हैं। मनुष्य जीवन में शब्दों और उसके अर्थ गाम्भीर्य से निर्मित संस्कारों को बचाने की कवायद समकालीन कविता में की गई है। जीवन में संस्कारों मर्यादाओं और अनिवार्य परम्पराओं के निर्वहन के लिए तद्विषयक शब्दों का संयोजन

कविता

लाला लालोलाल है

● नवीन हलदूणवी

लाला लालोलाल है,
नौकर तो कंगाल है।
भैया! हर महकमे का,
साहिब मालोमाल है॥

कालेधन वालों की तो,
आज चांदी हो गई।
बेचारे मजदूर का तो,
बुरा हाल-चाल है॥

भोले औ' ईमानदार,
लोक मेरे गांव के,
गांवों को तो लूट लेता,
शहर का दलाल है॥

बगैर पैसे मौज मेला,
उतनी ही दूर है।
अमीर से गरीब ज्यों,
आकाश से पाताल है॥

गोगडीले शाह की तो,
होती वाह-वाह जी।
आज सारे युग की तो,
टेढ़ी-मेढ़ी चाल है॥

खोट-पोट खाने वाले,
आज मोटे हो गये।
बोलबाला लूट का और,
लूट का कमाल है॥

चोर उचक्के खा गये,
गरीब की कमाई को।
'नवीन' तभी जग में तो,
महंगी रोटी-दाल है॥

काव्य-कुंज जसूर-176201,
जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश),
मो. 09418846773

आवश्यक है। वो शब्द जिसमें हमारे जीवने की सच्चाई, और अस्मिता छिपी है उनका जिंदा रहना कितना आवश्यक है, हमारे जीवन में क्या उपयोग एवं महत्त्व है, समकालीन कविता में इसे बडी बारीकी से रेखांकित किया है। कवियों ने उन शब्दों और भाषा के प्रयोग को प्राथमिकता दी है जिसमें हृदय की धड़कने विद्यमान हो, जिसमें जीवन संस्कार, अपनापन रिश्तों का ताप, सत्यानुभूति, संवेदनाएं व्यक्त की जा सके। ये शब्दावली कम्पयूटर, मोबाइल, इंटरनेट या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में नहीं मिल सकती है। ये शब्द अपने परिवार, बुजुर्ग अपने लोक जीवन और अपनी भाषा में मिल सकते है। इन्ही शब्दों द्वारा हम अपने आप को पहचान सकते है। अपने जीवन की उपयोगिता एवं महत्व को समझ सकते हैं। अत्याधुनिकता और व्यवसायीकरण के अन्धानुकरण में ये शब्द ही हमें आत्मीयता का अहसास करवाते हैं। समकालीन कविता इन्हीं शब्दों की हिफाजत में खड़ी, मानवीय मूल्यों को बचाए रखने में इनकी उपयोगिता का एक जीवन्त दास्तावेज है।

विभागाध्यक्ष हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रामपुर बुशैहर, जिला-शिमला

संदर्भ :

1. कुमार कृष्ण, पहाड़ पर नदियों के घर, पृ. 40
2. वही, पृ. 25
3. वही, पृ. 25
4. वही, पृ. 53
5. मनीषा झा, समय संस्कृति एवं समकालीन कविता, पृ. 133
6. उदय प्रकाश, एक भाषा हुआ करती है, पृ. 92-93
7. वही, पृ. 91
8. वही, पृ. 93
9. मनीषा झा, समय संस्कृति एवं समकालीन कविता, पृ. 138
10. निर्मला पुलुत, नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ. 72
11. वही, पृ. 73
12. प्रभामजुमदार, उन्नयन पृ., 167,168
13. कुमार कृष्ण, पहाड़ पर नदियों के घर, पृ. 24-25
14. वही, पृ. 62
15. वही, पृ. 54
16. वही, पृ. 54-55
17. वही, पृ. 36
18. राजेश जोशी, नेपथ्य में हंसी, पृ. 64
19. राजेष जोशी, दो पक्तियों के बीच में, पृ. 74
20. एकान्त श्रीवास्तव, अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 102
21. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, पृ. 176
22. वही, पृ. 177
23. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. 21
24. वही, पृ. 21-22
25. वही, पृ. 22
26. अशोक वाजपेयी, कुछ रफू कुछ थिगड़े, पृ. 79
27. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, शब्द और शताब्दी, पृ. 11
28. एकांत श्रीवास्तव, मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद, पृ. 65
29. कुमार कृष्ण, गाँव का बीजगणित, पृ. 33
30. वही, पृ. 41
31. अशोक वाजपेयी, कुछ रफू कुछ थिगड़े, पृ. 12

आलेख

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

● डॉ. रमाकांत

उत्तर आधुनिकता ने विकेन्द्रीयता को जन्म दिया। पिछड़े, दलित, स्त्री सामाजिक न्याय तथा क्षेत्रीय अस्मिता का साहित्य कई धाराओं में तेज गति से बहने लगा। हालांकि अस्मिता का साहित्य भारतीय परिवेश में पहले से मौजूद था और दलित साहित्य मराठी, कन्नड़ और तेलुगू-तमिल भाषाओं में शीर्ष पर पहुँच चुका था। स्त्री-लेखन भी नारी मुक्ति आन्दोलन के बाद साहित्यिक फलक पर विद्यमान था, विश्व स्तर पर नीग्रो साहित्य अपना स्थान पहले से ही बनाए हुए था, लेकिन हिंदी में इन धाराओं ने उत्तर आधुनिक काल में जोर पकड़ा। इस काल में केन्द्रीयता, एकाधिकार और राष्ट्रीयता गौण हुई और अस्मिता मुखर।'[1]

20 वीं सदी में इस बहिष्कृत समाज की चर्चा शुरू हुई। दरअसल भारतीय मानस दो समाजों के सिद्धान्त को मानता रहा है। वह समाज के स्तर को जन्म के आधार से जोड़ता है, इसलिए व्यक्ति के वर्ग का स्तर उसके सामाजिक या जन्म के स्तर को कभी न प्रभावित कर सका, न ही बदल सका। बँटवारा सवर्ण और असवर्ण अभिजन और आम आदमी के बीच रहा। इसलिए इनके दो मूल्य भी रहे हैं जो आज भी हमारी जीवन प्रणाली, हमारी मानसिकता तथा हमारी सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और न्यायिक प्रणाली तक को प्रभावित कर रहे हैं। क्या दो मानकों, दो मानसिकताओं पर साहित्य आज भी चुप्पी साधे रह सकता है।'[2] एक अभिजन सवर्ण है जिसे सब कुछ पाने का अधिकार है- सत्ता, प्रतिष्ठा, धन, ज्ञान, समृद्धि, ऐश्वर्य, सेवा-सुश्रुषा यानी सब अधिकार, कर्त्तव्य कोई नहीं!

'दूसरा है- असवर्ण जिसे 'शूद्र' कहते हैं। जिसे शास्त्रों द्वारा इन सबसे वंचित रखा गया। वे केवल सेवा करने के दावेदार हैं। फल प्राप्ति की इच्छा भी वे नहीं कर सकते। सब दमन कष्ट उनकी भाग्य रेखा में पूर्व निर्धारित है। पूवर्जन्म के फल हैं। अब जब यह वर्ग इस धारणा को नकारने लगा है और अभिजन समाज से सवाल करने लगा है, सब अधिकारों में हिस्सेदारी ही नहीं बल्कि जनसंख्या के आधार पर अपनी हिस्सेदारी भी चाहने लगा है और तथाकथित मानवता के नाम पर, अपने को मानव सिद्ध करते हुए वह उनसे मानवीय व्यवहार की अपेक्षा ही नही बल्कि मानवीय व्यवहार करने के लिए उन्हें बाध्य करने का भी सपना देखने लगा है तो दोनों का साहित्य एक कैसे होगा? एक अन्याय करने वालों का पोषक चाटुकार एवं उनके मनोरंजन का साधन है तो दूसरा सदियों की पीड़ा उड़ेलता, आक्रोश से भरा अन्याय का विरोधी।'[3]

दलित साहित्य का उद्‌भव लगभग छठे दशक में, मराठी साहित्य में एक साहित्यिक आन्दोलन व सामाजिक विद्रोह के रूप में हुआ, जिसके माध्यम से दलित व शोषित समाज का विद्रोह मुखरित हुआ है। उत्तरोत्तर उसका सम्मूर्त्तन और पल्लवन कन्नड़, तमिल व गुजराती में हुआ। हिंदी साहित्य के अन्तर्गत दलित चिन्तन और रचना कर्म के नाम पर कोई आन्दोलन नहीं हुआ, किन्तु वर्ण व जाति के नाम पर शोषित, उपेक्षित, पीड़ित, प्रताड़ित, वंचित, त्याज्य एवं दीन-हीन जीवनानुभूतियों को प्रगतिशील अर्थवत्ता का माध्यम अवश्य बनाया गया है। प्रेमचन्द, निराला, शमशेर, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि सभी प्रगतिशील रचनाकारों ने मानव समाज के शोषित व वंचित वर्ग को अपनी रचना का माध्यम बनाया है। मराठी साहित्य की भांति हिंदी में दलित साहित्य की कोई पृथक धारा नहीं रही है और न ही मराठी से उधार ली गयी अवधारणा के अनुरूप हिंदी साहित्य में दलित चिन्तन और सर्जनात्मक भावभूमि को अंगीकार किया गया है। सोद्देश्य दलित साहित्य की बुनियाद है महाराष्ट्र का दलित आन्दोलन।

दलित विमर्श का जिस तरह राजनैतिक विकास हुआ, उस तरह साहित्यिक विकास नहीं हुआ। साहित्य में उसकी तीन धाराएँ मिलती हैं। पहली धारा स्वयं दलित जातियों में जन्में लेखकों की है, जिनके पास स्वानुभूति का विराट संसार है। दूसरी धारा हिंदू लेखकों की है, जिनके रचना संसार में, 'दलितों का चित्रण सौन्दर्य सुख की विषय वस्तु के रूप में होता है।' तीसरी धारा प्रगतिशील लेखकों की है, जो दलित को सर्वहारा की स्थिति में देखती है।

कबीर ने वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित जनता की पीड़ा को दलित धारा का रूप दिया और अपने समकालीन सम्पूर्ण हिन्दू-

मुस्लिम समाजों को उद्वेलित कर दिया। यह उद्वेलन इस रूप में नहीं था कि उन्होंने दोनों धर्मों की कुरीतियों पर चोट की और पंडित, मुल्ला दोनों को फटकारा, बल्कि इस उद्वेलन का कारण था कि कबीर ने अपने को न हिंदू माना और न मुसलमान। उन्होंने अपना अलग पंथ विकसित किया, जिसमें न हिंदुओं के राम की चिन्ता है और न मुसलमानों के अल्लाह का गम है। यथा-

'हिन्दू कहो तो हो नहीं, मुसलमान भी गारी।
और
सुर नर मुनिजन औलिया यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहं घर किया कबीर।।'[4]

हिंदी में प्रमुख रूप से कबीर की कविताओं में पहली बार उस सड़ी-गली मान्यताओं का खुलकर विरोध मिलता है, यथा-

'गर्भ बास महि कुल नहि जाती।
ब्रह्म बिंद ते सब उतपाती।।
जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया।
तौ आन बाट काहे नहीं आया।।
तूम कत ब्राह्मण हम कत शूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध।।
कहु कबीर जो ब्रह्म विचारै।
सो ब्राह्मण कहियत है हमारे।।'[5]

ऐसे ही रैदास की एक पंक्ति दर्शनीय है, जिसमें समता की बात की गयी है-

ऐसा चाहो राज मैं, जहां मिलै वसन को अन्न।
छोट-बड़ों सब सम बसै, रैदास रहै प्रसन्न।।'[6]

दलित संत कवियों का युग विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाता है। अंग्रेजी हिसाब से भी यह 14-15वीं शताब्दी का युग था। आगे की दो शताब्दियों में दलित विमर्श का विकास दिखायी नहीं देता। इसका कारण यह हो सकता है कि दलित चेतना के विरुद्ध प्रतिक्रान्ति की धारा बहुत तेज हो गयी और उससे टक्कर लेना दलितों के लिए मुश्किल हो गया हो। लेकिन इसके बावजूद यह नहीं माना जा सकता कि दलित चेतना की वह धारा, जिसका कबीर ने सूत्रपात किया, आगे चलकर बिलकुल सूख गयी हो। दरअसल, यह धारा अलग प्रवृत्ति की थी और परिवर्तनकारी थी, इसलिए यह हो सकता है कि ब्राह्मण इतिहास लेखकों ने इस धारा को उपेक्षित किया हो। कबीर, रैदास आदि को उपेक्षित करना इसलिए मुश्किल रहा, क्योंकि वे इतिहास के पात्र नहीं, इतिहास के निर्माता थे, युग प्रवर्तक थे। लेकिन 19वीं शताब्दी में साहित्य की दलित धारा भारत के लगभग सभी भाषाओं में पुनः उभरती हुई दिखायी देती है। इसका कारण यह था कि इस समय तक भारत में अंग्रेजी राज्य कायम हो चुका था और ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से अछूतों में शिक्षा का प्रकाश पहुँचने लगा था। इस नवजागरण ने प्रायः सभी भाषाओं में दलित रचनाकार पैदा किए, जिन्होंने न सिर्फ अपना साहित्य और अपना इतिहास लिखा, बल्कि अपने समय के साहित्य को प्रभावित भी किया। सातवें दशक के हिंदी साहित्य में खास तौर से कविता में व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र विद्रोह मिलता है। राजनैतिक अव्यवस्थाएँ, सामाजिक भेदभाव, आर्थिक विषमाताएँ, सांस्कृतिक पतन और इन सबके बीच मानव का शोषण इस दशक के साहित्य के केन्द्र में है। यह साहित्य कभी लघु मानव की बात करता है, कभी सहज मानव की और कभी हताश-निराश मानव की मनःस्थिति का वर्णन करता है। सामाजिक यथार्थ इस दशक के साहित्य में अत्यन्त विद्रूप और जुगुप्सापूर्ण है। जैसे कैलास वाजपेयी की यह कविता-

'और चाहे कुछ भी नहीं दिया सभ्यता ने
कम से कम यह तो किया है सभी को
बराबर अमानव बना दिया।[7]

इस तरह की घोर निराशावादी और तर्कहीन कविताएँ इस दौर में ज्यादा लिखी गयीं। इस युग की कविता में पूँजीवादी संस्कृति का विरोध लोकतंत्र के विरोध तक पहुँच गया है। देखिए राजकमल चौधरी की यह कविता-

आदमी को तोड़ती नहीं है लोकतांत्रिक पद्धतियाँ
केवल पेट के बल उसे झुका देती हैं
धीरे-धीरे अपाहिज धीरे-धीरे नपुंसक बना देने के लिए
उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी नागरिक बना लेती हैं।
हम लोगों को अब शामिल नहीं रहना है,
इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए
खत्म कर देने की साजिश में।'[8]

धूमिल में भूख का यह यथार्थ है-

'भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है
संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है।'[9]

इस प्रकार हिंदी कविता में दलित विमर्श का कोई पृथक् रूप नहीं है। मार्क्सवाद से प्रभावित इस जनवादी कविता में पूरा मनुष्य ही दलित है जिसे लोकतंत्र ने अपाहिज बना दिया है। पूंजीवादी तंत्र ने उसे अमानव बना दिया है जिसमें कुंठाएँ हैं, जीवन के प्रति वितृष्णा है और बकलम लीलाधर जगूड़ी उसका भूकंप धंसा घर, पृथ्वी में बंद हो चुका है।' भटका हुआ अकेलापन-यही इस युग की कविता का यथार्थ है। इसके बावजूद जगदीश गुप्त का 'शंबूक' लघु काव्य भी इसी कालखण्ड की रचना है, जिसमें दलित विमर्श इतिहासबोध के रूप में सामने आता है। वे शंबूक के माध्यम से वर्णव्यवस्था पर क्रान्तिकारी प्रहार करते हैं-

'जो व्यवस्था व्यक्ति के सत्कर्म को भी मान ले अपराध
जो व्यवस्था फूल को खिलने न दे निर्बाध
जो व्यवस्था वर्ग-सीमित स्वार्थ से हो ग्रस्त
वह विषय घातक व्यवस्था शीघ्र ही हो अस्त।'[10]

नरेश मेहता के 'शबरी' और भारत भूषण के 'अग्निलीक' खण्ड काव्यों में भी विचारोत्तेजक विमर्श है। नरेश मेहता की शबरी कहती है-

'क्या धर्म तत्त्व से ऊँची है वर्णाश्रम मर्यादा?
तब व्यर्थ तपस्या, पूजन यह गंगा भी है शूद्रा।'[11]

लेकिन इसी दशक में स्वयं दलित लेखकों का साहित्य अस्तित्व में आया। कहा जाता है कि पहले यह मराठी में आया, पर ऐसा नहीं है। दलित साहित्य का उदय हिंदी और मराठी में लगभग एक ही समय में हुआ है। हिंदी में साठ के दशक में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु दलित चेतना के साहित्य के प्रवर्त्तक है। इसकी शुरुआत भी कविता से ही हुई। कविता और गद्य में दलित-चेतना की बेहतरीन पुस्तकें इसी समय प्रकाशित हुईं, जिनमें चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, ललई सिंह यादव, डॉ. अंगने लाल, सुंदर लाल सागर, डॉ. डी. आर. जाटव, रजनीकान्त शास्त्री, मंगलदेव विशारद, रामस्वरूप वर्मा, खेमचन्द्र सौगत, लालचन्द्र राही, बदलू राम रसिक आदि लेखकों की पुस्तकों के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर, भदंत आनन्द कौशल्यायन, राहुल सांकृत्यायन, अछूतानन्द और रामस्वामी नायकर की क्रान्तिकारी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। इस साहित्य को यद्यपि 'दलित साहित्य' का नाम अभी नहीं मिला था, पर इन लेखकों की पुस्तकों ने एक सशक्त दलित-विमर्श को उभारा था। सत्तर के दशक में बाकायदा 'दलित साहित्य' के नामकरण के साथ जो साहित्य अस्तित्त्व में आया, उसके मूल में 60 के दशक का दलित-विमर्श ही था। हिंदी में उन पुस्तकों को पढ़कर ही नए दलित लेखकों की जमात पैदा हुई थी, जो आज दलित-साहित्य के प्रख्यात हस्ताक्षर हैं।

दलित कविता में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश और विद्रोह है। उसकी जाति चेतना एक ऐसे समाज की वाहक है, जो स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व पर आधारित हो।

दलित-साहित्य के माध्यम से पहली बार वह सामाजिक यथार्थ सामने आया, जिसे दलित लेखकों ने स्वयं भोगा था। मराठी में दया पवार ने 'अछूत' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी, जो किसी भी दलित की पहली कहानी है। यह रोंगटे खड़े कर देने वाली यंत्रणा की कहानी है, जिसे लेखक ने स्वयं भोगा था। मरे हुए जानवरों के शरीर को उधेड़ना, उससे मांस काटकर लाना, उसे घरों में टांगकर सुखाना, उसका सड़ना, उसको पकाकर खाना, इस सबको पढ़ना, एक अछूत के जिन्दा नर्क से गुजरना है। इसके बाद 'अक्कर-माशी', 'उठाईगीर' और हिंदी में 'अपने-अपने पिंजरे' तथा 'जूठन' आत्मकथाएँ आयीं, जिन्होंने एक नया ही सामाजिक यथार्थ हमारे सामने रखा, जिसे इसके पूर्व किसी दलितेत्तर साहित्यकार ने प्रस्तुत नहीं किया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' सवाल उठाती है कि यदि दलित समस्या, वर्ग समस्या है और जन्मना दलितों के सिवा भी लोग दलित हैं, तो यह व्यवस्था किसने बनायी कि 'जूठन' उठाने और खाने का काम जन्मना दलितों को ही करना पड़ा। यदि गरीबी ही मुख्य समस्या है और दलित भी वैसे ही गरीब हैं, जिस तरह की दूसरी जातियों में गरीब हैं तो दया पवार की 'अछूत' आत्मकथा उनसे पूछ सकती है कि फिर मरे जानवरों का सड़ा मांस उन गरीबों को क्यों नहीं खाना पड़ा?

मराठी दलित लेखकों ने हिन्दूधर्म, उसकी आस्थाओं और उसकी परम्पराओं को नकारा। नामदेव ढसाल ने लिखा- 'मैं तुम्हारे ग्रंथों को गालियाँ देता हूँ।' यशवंत मनोहर ने लिखा- 'मैं इन हरामखोर परम्पराओं पर विध्वंस का हल चलाता हूँ।' अरुण काम्बले ने लिखा- 'तुम्हारी ढोंगी संस्कृति मुक्ति की घोषणाओं की गर्जन की कम्पन से ढह जायेगी।' हिंदी दलित कवियों ने भी इसी विमर्श को आगे बढ़ाया। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने पूछा- 'यदि तुम्हें नदी के तेज बहाव में उल्टा बहना पड़े/दर्द का दरवाजा खोलकर भूख से जूझना पड़े/भेजना पड़े नयी नवेली दुल्हन को/पहली रात ठाकुर की हवेली/तब तुम क्या करोगे? डॉ. धर्मवीर लिखते हैं-

वर्ण निठल्लों के अधिकार चले आ रहे हैं,
जातियाँ मूर्खों की सम्पत्ति घोषित है।
अस्पृश्यता प्रमादियों का पहला बचाव है।'[12]

निस्संदेह दलित कविता में वर्णव्यवस्था के खिलाफ आक्रोश और विद्रोह है। उसकी जाति चेतना एक ऐसे समाज की वाहक है, जो स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व पर आधारित हो। इसी आधार पर वह हिन्दुत्व की विरोधी तथा बौद्ध धर्म की समर्थक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस दलित विमर्श को एक सार्थक वर्ग चेतना से ही जोड़ने की कोशिश की है। उनकी कहानी, 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में दो मुख्य पात्र हैं, एक मिराशी जाति का दलित है और दूसरा बढ़ई जाति का पिछड़ा। दोनों गांवों से आकर शहर में ब्राह्मण बनकर रहते हैं और दोनों ही अपने नाम के आगे शर्मा लगाते हैं। दोनों के मकान पास-पास हैं और दोनों सम्पन्न हैं, पढ़े-लिखे परिवार हैं, दोनों परिवारों के बीच अच्छे सम्बन्ध हैं, खाना-पीना है। मिराशी के लड़के से बढ़ई की लड़की की शादी तय हो जाती है पर ऐन वक्त पर बढ़ई को अपने मित्र की जाति का पता चल जाता है। घर में कोहराम मच जाता है। दोस्ती दुश्मनी में बदल जाती है। वर्गीय धारणा खत्म हो जाती है और जातीय धारणा मजबूत हो जाती है। इस समस्या को कहानी में बढ़ई ब्राह्मण की बेटी हल करती है यह रहस्य खोलकर कि वे भी ब्राह्मण नहीं हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसके माध्यम से जाति की धारणा पर व्यापक प्रहार किया गया है। यह एक ऐसा दलित-विमर्श है, जो न केवल जातिविहीन समाज का, बल्कि वर्ग विहीन समाज का भी समर्थन करता है।

'दलित साहित्य की कल्पना आज अधिक विकसित हुई है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति प्रथमतः सन् 1928 में हो चुकी थी, किन्तु उसका स्वरूप आज के जैसा नहीं था, उसमें एक सरल अर्थ निहित था- दलितों द्वारा लिखा साहित्य यानि दलित साहित्य।'[13] आज भी कुछ परम्परावादी मराठी साहित्यकार दलित साहित्य पर यही अर्थ चिपका देते हैं। परन्तु सन् 1956 में बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा किए गए धर्म चक्र आन्दोलन के बाद उसका मूलभूत स्वरूप परिवर्तित हुआ है। दलित मनुष्य के जीवन का दलित लेखकों के द्वारा किए गए चित्रण और दलित जीवन की स्थितियों का कल्पना के आधार पर दलितों द्वारा किए गए चित्रण को 'दलित-साहित्य' कहना दलित साहित्य की कल्पना पर अन्याय है। आज दलित साहित्य के क्षेत्र में विस्तार होने के कारण उसकी पृष्ठभूमि को भी वैचारिक व दार्शनिक आधारों पर विभाजित किया गया है।

ब्वॉयज होस्टल-5, ब्लॉक-2, रूम नं. 27, पंजाब विश्वविद्यालय, सेक्टर-14, चंडीगढ़-160014, मो. 9646375961

संदर्भ सूची

1. रमणिका गुप्ता, 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार', दिल्ली, समीक्षा प्रकाशन, प्र. सं. 2001, पृ. 30
2. वही, पृ. 37-38
3. वही, पृ. 38
4. कंवल भारती, 'दलित विमर्श की भूमिका', इलाहाबाद, इतिहास बोध प्रकाशन, प्र. सं. 2002, पृ. 103
5. वही, पृ. 15
6. वही, पृ. 104
7. वही, पृ. 122
8. वही, पृ. 122
9. वही, पृ. 122
10. वही, पृ. 123
11. वही, पृ. 123
12. वही, पृ. 125
13. सदानन्द शाही, 'दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द', गोरखपुर, प्रेमचन्द साहित्य संस्थान, प्र. सं. 2000, पृ. 159

बोध कथा

कल की चिंता क्यों

● **रितेंद्र अग्रवाल**

एक रियासत का जमींदार काफी मेहनती, ईमानदार तथा जनसेवक था। एक बार उसने अपने मुनीम को बुलाकर पूछा- जरा आकलन करके बताओ हमारे पास जो धन है, वह कितने दिन का है।

मुनीम ने कहा- ठीक है। कुछ दिन बाद मुनीम ने बताया कि हमारे पास जो धन है, इसी तरह से खर्च हो तो छह पीढ़ी के लिए काफी होगा।

जमींदार ने सोचा तो फिर सातवीं पीढ़ी का क्या होगा? वह चिंतित रहने लगा।

जमींदार के लोग एक संन्यासी को बुलाकर लाए। उसने जब जमींदार से समस्या पूछी तो संन्यासी ने कहा ठीक है।

संन्यासी बोला- कल सुबह हम एक शख्स से मिलने चलेंगे आप उसके लिए खाना ले चलिएगा। जमींदार बोला- ठीक है।

अगले दिन संन्यासी के साथ जमींदार शहर के बाहर एक गरीब व फकीर के घर गए, उन्होंने खाना दिया तो वह बोला आज का खाना तो पड़ोस से आ गया है। इसे आप ले जाएं।

जमींदार बोला- कल के लिए काम आ जाएगा।

गरीब ने कहा- कल की कल देखेंगे। ईश्वर खयाल करेगा, आज क्या सोचना।

जमींदार सोचने लगा- यह आदमी कल की नहीं सोच रहा और खुश है। मैं छह पीढ़ी के बाद सातवीं के लिए दुखी हूं। क्यों?

सोचते ही जमींदार चिंतामुक्त हो, प्रसन्न हो गया

हारिए न हिम्मत

हरीश नाम का एक बालक एक शहर में रहता था। वह कई जगह नौकरी ढूंढ चुका था। लेकिन नहीं मिली। हिम्मत हार रहा था। सोच रहा था, मेरी किस्मत ही खराब है। मुझे काम नहीं मिलेगा। उसकी सोच बदलने लगी। उसके दादाजी ने देखा तो चिंतित होने लगे। उन्होंने सोचा- यह ठीक नहीं है, बच्चे के लिए।

उन्होंने काफी कोशिश की लेकिन बेकार।

एक दिन हरीश दादाजी के साथ बाजार जा रहा था। रास्ते में देखा कि एक आदमी जिसका एक हाथ नहीं है, हंसते, गुनगुनाते हुए रिक्शा चला रहा है।

दादाजी ने कहा- देखा, बेटे उसके हाथ नहीं है, फिर भी रिक्शा चला रहा है। तुम तो फिट हो फिर क्यों दुखी हो?

हरीश ने कहा- दादाजी समझ गया। अब दुखी नहीं होऊंगा।

हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, धैर्य से काम लेना चाहिए जीवन में।

11/500, मालवीय नगर, जयपुर, राजस्थान-302017,
मो. 0 75974 36456

आलेख

हिंदी पुस्तकें बनाम हिंदी पत्रिकाएं दशा व दिशा

● कृष्णवीर सिंह सिकरवार

आज भारत देश के लगभग प्रत्येक घर की सुबह दैनिक पत्र पढ़ने के साथ होती है जिन्हें लगभग 80 से 90 प्रतिशत पाठक पढ़ते होंगे। गाँव वाले इलाके जहाँ पर किसान व मजदूर वर्ग रहता है इस प्रकार की सामग्री समुचित व्यवस्था व शिक्षा का अभाव होने के कारण पढ़ने से वंचित रह जाते है। किंतु शहरी इलाकों मे इनकी दशा बेहद अच्छी है, ज्यादातर पाठक इन दैनिक पत्रों को पढ़ते है। इन दैनिक पत्रों का मूल्य कम होने के कारण यह प्रत्येक पाठक की पहुँच में भी होता है। इस प्रकार इन दैनिक पत्रों की बिक्री संतोषप्रद कही जा सकती है।

प्रस्तुत आलेख में हिंदी पुस्तकों की बिक्री व हिंदी की लघु पत्रिकाओं की दशा व दिशा के संदर्भ में विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। पुस्तक प्रकाशनों का हमेशा से ही यह रोना रहा है कि हिंदी मे छपने वाली पुस्तकों की बिक्री बहुत ही निराशाजनक है। यह प्रश्न बड़ा अजीब परंतु सत्य भी है कि हिंदी में पुस्तकें बिकती क्यों नहीं है? वैसे भी पुस्तकें समाज का दर्पण होता है, परंतु यह दर्पण आज धुंधला-सा हो गया है। हिंदी पुस्तकें पहले भी छपती थी आज भी छपती है परंतु आज इन पुस्तकों की बिक्री में बेहद कमी आयी है और इन पुस्तकों को पढ़ने वाले पाठकों की संख्या भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

सच पूछा जाए तो इन पुस्तकों की बिक्री का एक अनोखा गणित काम करता है, प्रकाशक प्रारंभ में पुस्तक की 500 से 600 प्रतियाँ छापता है। इन प्रतियों के बिक जाने पर ही दोबारा छापने का प्रयास करता है। यहाँ यह कहना अति आवश्यक है कि कभी-कभी दोबारा पुस्तक को छापने में कई वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। यह सब इस बात पर निर्भर होता है कि पहले की छपी हुई प्रतियों को बिकने में कितना समय लगा, अगर पुस्तक छपने के उसी वर्ष उसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो जाती है तथा बाजार में उक्त पुस्तक की निरंतर मांग बनी हुई है तभी प्रकाशक पुस्तक को दोबारा छापने का साहस करता है। अगर पुस्तक की प्रारंभ में ही छपी हुई प्रतियाँ नहीं बिकती हैं तो जब तक बची हुई प्रतियाँ बिक नहीं जाती दोबारा छापने में कई वर्ष व्यतीत हो जाते है।

इस प्रकार पुस्तक छापना व बेचना बड़ा ही जोखिम का कार्य हो गया है। फिर किताब की कीमत भी प्रकाशकों द्वारा किताब पर आयी हुई लागत से करीब चार से पाँच गुना ज्यादा रखी जाती है, ताकि अगर पचास प्रतिशत पुस्तकें भी बिकती हैं तो किताबो पर आयी हुई लागत वसूल हो जाये इस तरह देखा जाए तो पुस्तकों की 300 से 400 प्रतियों की बिक्री हो जाने पर उक्त किताब सफल मानी जा सकती है तथा उसके अगले संस्करण के छापने के विषय में विचार किया जाता है।

वैसे भी आज सरपट दौड़ते समय को देखते हुये यह अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है कि देश भर में कितने ऐसे पाठक होंगे जो साहित्य को पढ़ने का शौक रखते होंगे तथा जो शौक रखते भी होंगे वह सभी अपनी घर-गृहस्थी के फेर में पढ़ने की वजह से तथा समयाभाव के कारण कितना समय अपने शौक को पूरा करने को दे पाते होंगे यह कहना अभी संभव नहीं है। फिर भी इन सब बातों से इतर एक आम पाठक जो वाकई साहित्य प्रेमी है तथा किसी भी हालत में अच्छा साहित्य पढ़ना चाहता है वह किताबों की बढ़ी हुई कीमत के कारण साहित्य खरीद नहीं पाता तथा अपने शौक की तिलांजलि देकर आगे बढ़ जाता है।

इन पुस्तकों की बिक्री बड़ी हुई कीमत के कारण सबसे ज्यादा प्रभावित होती रही है। आज कोई भी पुस्तक उठाकर देख लो उसके पृष्ठों से ज्यादा उसकी कीमत मिलेगी। अब अगर 50-70 पृष्ठ की पुस्तक की कीमत 200-250 की बीच होगी तो क्योंकर पाठक उसको खरीदेगा। अब पाठक अपनी पंसद की पुस्तक को पढ़ना चाहता है, मगर ज्यादा कीमत होने के कारण खरीद नहीं पाता है। इस वजह से पुस्तकों की बिक्री प्रभावित हो रही है, इस समस्या के समाधान के लिये निजी प्रकाशन व शासन को इस दिशा मे ठोस कदम उठाने होगें तभी पुस्तकों की बिक्री संतोषजनक बनायी जा सकती है। पुस्तकों की कीमत कम रखी जावे व ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों को पेपरबेक में छापा जाना चाहिये

जिससे पुस्तकों को आम पाठक नसीब हो सके।

हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशनों का कहना कि पुस्तकों की बिक्री संतोशजनक नहीं है व इनके प्रकाशन में जितनी लागत आती है उतना मुनाफा इनकी बिक्री से नहीं हो पाता है व हर बार नुकसान ही उठाना पड़ता है। इस संबंध मे प्रख्यात कथाकार ममता कालिया अपने एक साक्षात्कार में इस प्रकार खुलासा करती हैं कि- "किताबें इतनी मंहगी होती है कि सभी के लिये इसे खरीदना संभव नहीं हो पाता। खुद मेरी किताबें इतनी महंगी है कि मैं उन्हें खरीद नहीं पाती.....आप सोचिए, साहित्य की रफ्तार पत्रिकाएं हैं।'' (1) यहाँ पर ममता जी के किताबों के महंगी होने के संबंध में स्पष्टतः विचार परिलक्षित होते है।

"...आज प्रकाशक सपाट रूप से कहते है कि 'कोई पुस्तकें खरीदता नहीं', अधिकतर 'पुस्तकें तो पांच सौ प्रतियों के प्रिंट ऑर्डर से छपती हैं। वह भी रखी रहती है', आदि।'' (2) कुछ हद तक यह बात सही भी हो सकती है परन्तु देश मे हर वर्ष आयोजित होने वाले पुस्तक मेले कुछ और ही नजारा बयाँ करते हैं। यह पुस्तक मेले देश में हर वर्ष आयोजित किये जाते है जिनमें देश भर के विभिन्न प्रकाशनों के साथ-साथ विदेशों के प्रकाशन भी अपनी पुस्तकों को बिक्री के लिये भाग लेते हैं व पुस्तक प्रेमी बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं और अपनी पसंद की पुस्तकों को खरीदते व साहित्यिक मित्रों को भेंट स्वरूप प्रदान करते हैं। इन मेलों में लाखों करोड़ों की पुस्तकों की बिक्री इस बात को पुष्ट करती है कि आज भी देश मे अच्छी पुस्तकों को खरीदने वाले पाठकों की कमी नही है बशर्ते उन्हें सही जगह व पुस्तकों का बेहतर प्रचार-प्रसार मिले तो पाठक मिल ही जायेंगे।

एक निजी समाचार पत्र में लेखक व पाठक के बीच के रिश्ते को इस प्रकार परिभाषित किया गया है- "हिंदी में जो लेखक हैं वही पाठक है। यानी, लोग एक दूसरे का लिखा पढ़ लेते है और आपस में तारीफें करते रहते हैं। पाठकों की कमी का अधिक रोना वे ही रोते है जो खुद को बड़ा लेखक व हिंदीसेवी समझते हैं और तमाम पद पुरस्कार तथा सम्मान झटक लेना चाहते हैं। वे यह भी मानते हैं कि गलती उन लोगों की है जो उनका लिखा पढ़ते नहीं है। यह सवाल स्वयं को हिंदी लेखक समझने वाले तमाम लोगो से है कि आपने कितने पाठक बनाऐं हैं ? क्या आप लेखन के नाम पर विचारधारा, अपनी कुंठा और बौद्धिकता ही परोस रहे हैं और सोच रहे है कि लोग इसे पढ़कर स्वयं को धन्य मानेंगे ? या फिर आपने कभी ऐसा लिखने की कोशिश की है जिसे पढ़कर मन में गुदगुदी हो, दिल भर आए, भावनाएं उमड़ने लगे, प्रेरणा मिले या उत्सुकता जागे? रोना-धोना छोड़िए। ऐसा लिखिए, जो असरदार हो, पढ़ने वाले के दिल तक पहुँचे।'' यहाँ लेखक की लेखनी व उसके अन्तर्द्वन्द्व के संदर्भ में बहुत कुछ देखने को मिलता है।

प्रायः देखा जाता है कि पुस्तकों की अच्छी बिक्री हेतु उनका प्रचार प्रसार कम ही किया जाता है जो कि किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। वर्तमान समय प्रचार प्रसार का समय है, अगर वस्तु का प्रचार प्रसार बेहतर ढंग से नहीं किया जायेगा तो वह आम आदमी की जानकारी में नहीं आ पायेंगी और उसकी बिक्री भी प्रभावित होगी। आज हम टेलीविजन व अन्य मीडिया संसाधनों के माध्यम से देखते हैं कि रोजाना इंसानों के काम में आने वाली दैनिक वस्तुऐं चाहे वह सुई से लेकर हवाई जहाज ही क्यों न हो, इन पर लाखों-करोड़ों रुपये विज्ञापन के रूप में खर्च किये जाते है। इस प्रचार प्रसार का लाभ भी विज्ञापन कंपनियों एवं उस वस्तु की बिक्री पर कई गुना होता है। परंतु पुस्तकों की बिक्री हेतु किसी प्रकार का विज्ञापन नहीं किया जाता है, क्योंकि विज्ञापन आदि पर लाखों रुपये का खर्चा आना संभावित होता है। फिर इस बात की भी कोई गारंटी नहीं होती है कि लाखों रुपये खर्च करके पुस्तकों की बिक्री हो ही जायेगी। इस वजह से अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें आम पाठकों की जानकारी में न आने के कारण उनकी पहुँच से दूर हो जाती है तब उसकी बिक्री का तो सवाल ही नहीं उठता। पुस्तक की बिक्री हेतु उसका आम पाठक तक जानकारी पहुँचना जरूरी होता है। पाठक पुस्तक पढ़ना चाहता है परंतु आवश्यक प्रचार प्रसार के अभाव में पुस्तक की बिक्री प्रभावित होती है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि पुस्तकों के प्रकाशकों द्वारा हमेशा यह आरोप लगाये जाते है कि पाठकों में साहित्य के प्रति उदासीनता हो गई है, गलत है।

अगर पाठकों की साहित्यिक उदासीनता का प्रकाशनों द्वारा रोना रोया जाता है तो यह पुस्तक मेले देश भर मे आयोजित नहीं किये जाते जिसका सबसे बडा उदाहरण दिल्ली में प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित होने वाले पुस्तक मेले का लिया जा सकता है जो आज भी रिकार्ड पुस्तकों की बिक्री के लिये जाना जाता है और पाठकों के द्वारा इसका प्रतिवर्ष इन्तजार किया जाता है। "देशभर के रेलवे स्टेशनों के बुक स्टॉल गवाह है कि न केवल सस्ते उपन्यास, बल्कि हिंदी में उपलब्ध सर्वोत्तम, स्तरीय साहित्य भी लोगों द्वारा निरंतर खरीदा जाता रहा है। वह भी बिना विज्ञापन। उसे साधारण पाठक खरीदते है। शरतचंद्र, बंकिम चंद्र, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद, बच्चन, दिनकर, अज्ञेय, वृंदावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, नरेन्द्र कोहली, टॉलस्टाय, चेखव, जेन ऑस्टिन, शेक्सपियर, डिकेंस, आर्वेल आदि अनेक लेखकों के जितने भी संस्करण, जितने तरह के प्रकाशकों द्वारा छापे जाते हैं, सब बिक जाते है।'' (3) हां आज बेहतर प्रचार प्रसार के अभाव में पुस्तकों की जानकारी पाठकों तक पहुंच नही पाती है इस कारण अच्छी से अच्छी पुस्तकें पाठकों के इंतजार मे दम तोड़ देती हैं। आज यह आवश्यक हो गया है कि पुस्तकों का बेहतर तरीके से प्रचार प्रसार किया जाये तो देश मे पुस्तकों को खरीदने वाले पाठकों की कमी नहीं है। सरकार को भी ऐसे तरीके खोजने होंगे जिनके माध्यम से पुस्तकों

की जानकारी आम पाठकों तक बेहतर तरीके से पहुँच सके तभी इनकी बिक्री को संतोषजनक बनाया जा सकता है।

आज पुस्तकों की सफलतम बिक्री हेतु प्रकाशनों की निगाह में एक ही सफल तरीका बचा है, थोक में बिक्री करने का जो यह प्रकाशक देश भर में फैले हुए सरकारी पुस्तकालय, गैर सरकारी पुस्तकालय एवं भारत सरकार के कई संस्थानों को करते है। यह विभाग अपने लिये थोक में पुस्तकों का क्रय करता है, अतः प्रकाशक भी इन्ही संस्थानों से संपर्क स्थापित कर अपनी पुस्तकों को बिक्री करते है तथा अच्छा लाभ प्राप्त करते है। इस कारण भी वे पुस्तकों का कम ही प्रचार प्रसार करते है, परंतु यहाँ भी जान पहचान व घूसखोरों का बोलबाला रहता है जो इन चीजों में निपुण होते हैं वे अच्छा लाभ कमा लेते हैं और जिनकी इन संस्थानों में जान पहचान नहीं होती है उन्हें निराश होना पड़ता है। इस सब के वावजूद भी पुस्तकों का लाभ आम पाठकों को नहीं मिल पाता है। क्योंकि यह पुस्तकें उक्त संस्थानों की अलमारियों की शोभा बढ़ाती रहती है तथा बेहतर रख रखाव व पाठकों की कमी होने की वजह से दीमकों की खुराक बनकर खत्म हो जाती है।

हममें से बहुतों को वह जमाना याद होगा, जब हिंद पॉकेट बुक्स ने पुस्तक व्यवसाय में क्रांति ला दी थी.....जिसके कारण क्लासिक्स और अन्य अच्छी किताबें हर पुस्तक प्रेमी के हाथ में दिखाई देने लगी थी। हिंद पॉकेट बुक्स ने भी लाखों किताबें बेची होंगी, जिनमे से अधिकतर की कीमत एक रूपया थी। इसे हम पुस्तक संस्कृति और व्यावसायिकता का मधुर मिलन कह सकते हैं.....वास्तव में, प्रकाशक लेखक और पाठक के बीच एक संवेदनशील पुल है। यह पुल ऐसा होना चाहिए जिस पर दोनों ओर से यात्रियों का तांता लगा रहे।'' (4)

यहाँ पर भारतवर्ष के सबसे सफलतम माने जाने वाले प्रकाशन की चर्चा किये बगैर बात पूर्ण नहीं हो सकती है। यह प्रकाशन है, गीताप्रेस गोरखपुर जो कई वर्षो से धार्मिक साहित्य प्रेमियों को सस्ती व अच्छी पुस्तके उपलब्ध करवाता आ रहा हैं। आज की मँहगाई में भी इस प्रकाशन ने अपने सुधी पाठकों के हित को देखते हुये पुस्तकों के दामों में बहुत ज्यादा बढ़ोतरी नहीं की है। अभी भी इस प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तकें आम पाठकों के बीच लोकप्रिय बनी हुई है। इस लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि इस प्रकाशन ने सीधे अपने पाठकों के बीच पुस्तकों को पहुँचाने के लिये देशभर में अपनी एजेंसियां खोल रखी है, जिसके कारण पाठक सीधे इन एजेंसियों पर जाकर पुस्तक को खरीद सकता है। इस तरह पाठक का पुस्तक को मंगाने पर होने वाला डाकखर्च व्यय (40 से 50 रु.) भी बच जाता है जिसका सीधा फायदा पाठकों को होता है।

उदाहरण के रूप में इस प्रकाशन से प्रकाशित रिकार्ड बिक्री के लिये पहचाने जाने वाली पुस्तक 'श्री रामचरित मानस' धार्मिक हिंदी ग्रंथ व 'सुंदर काण्ड' पुस्तक का नाम ले सकते है जो आज प्रत्येक हिंदू धर्म को मानने वाले पाठकों के घर में देखने को मिल जायेगी। इन ग्रंथों को घर का प्रत्येक सदस्य पढ़कर अपनी जिज्ञासा शांत करता है। एवं इन पुस्तकों की प्रतियाँ विशेष धार्मिक अवसरों पर उपहार स्वरूप भेंट करता है। फलस्वरूप यह ग्रंथ अपने पाठकों के बीच शुरुआत से ही अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। इसी लोकप्रियता के कारण इन पुस्तकों की निरन्तर माँग बनी हुई है। आज भी अपने प्रथम प्रकाशन से यह ग्रंथ निरन्तर छपे चले आ रहे है व इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पाठकों के बीच इनके लोकप्रिय होने का एक अन्य कारण इनका मूल्य बेहद कम होना भी है। 'श्री रामचरित मानस' हार्डबाउंड में लगभग 800 पृष्ठों का है तथा इसका मूल्य मात्र 75 रु. रखा गया है जो किसी भी लिहाज से पाठकों की जेब से दूर नहीं है। इसी तरह 'सुंदर काण्ड' 40 से 50 पृष्ठों का होने के बावजूद मूल्य महज 5 रुपये है। कहा जा सकता है कि पाठकों से इन पुस्तकों में आयी लागत मूल्य ही वसूला जाता है। अतएव यह ग्रंथ आज सबसे ज्यादा बिकने वाले कहे जा सकते हैं।

आज पुस्तकों की बिक्री इन्टरनेट के माध्यम से भी की जा रही है। यह एक अच्छा कदम है, परंतु यहाँ भी बड़ी हुई कीमतें पुस्तकों की बिक्री प्रभावित करती हैं तथा जागरूक पाठकों को निराश ही होना पड़ता है। आज नई-नई तकनीक का समय है जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण इन्टरनेट का होना है। आम जनमानस में इन्टरनेट एक लोकप्रिय व सशक्त माध्यम बन चुका है, जहाँ पर कई कंपनियाँ पुस्तको को बेच रही है।

आज पुस्तकों की बिक्री इन्टरनेट के माध्यम से भी की जा रही है। यह एक अच्छा कदम है, परंतु यहाँ भी बड़ी हुई कीमतें पुस्तकों की बिक्री प्रभावित करती हैं तथा जागरूक पाठकों को निराश ही होना पड़ता है। आज नई-नई तकनीक का समय है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण इन्टरनेट का होना है। आम जनमानस में इन्टरनेट एक लोकप्रिय व सशक्त माध्यम बन चुका है, जहाँ पर कई कंपनियाँ पुस्तकों को बेच रही है। कई हजार पुस्तकों को गूगल बुक एवं ई-बुक के रूप में अपलोड करके रखा गया है जिन्हें एक आम पाठक निःशुल्क पढ़ सकता है व इन पुस्तकों की जानकारी ले सकता है। कई बेवसाइड हिंदी पुस्तको के संदर्भ में अच्छी जानकारियाँ पाठकों तक पहुँचा रही है, लेकिन इन्टरनेट शहरी पाठकों के पास उपलब्ध हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्र तो अभी भी इन माध्यमों से अछूता ही माना जायेगा। जो पाठक अपनी निजी लायब्रेरी बनाकर अध्ययन करते है उन्हें तो यहाँ से निराशा ही हाथ लगेगी।

साहित्य जगत् में कुछ ऐसे भी पाठक होते हैं जो सस्ता साहित्य पढ़ने का शौक रखते हैं उन्हें यह किताबे बाजार में हाथ ठेलों पर 20 से 25 रुपये में आसानी से प्राप्त हो जाती है जिनमे सेक्स संबंधी, फिल्मी गानों से संबंधित, चुटकुलों आदि से संबंधित, जासूसी उपन्यास एवं कहानियों से संबंधित आदि। इन किताबों का अपना एक पाठकवर्ग होता है तथा यह पुस्तकें खासकर इन्ही के लिये छापकर उपलब्ध करायी जाती हैं क्योंकि एक तो यह किताबें बेहद सस्ती होती है तथा मनोरंजक भी व आसानी से कहीं पर भी उपलब्ध हो जाती हैं। इन पुस्तकों को छापने में भी लागत कम आती है अतः इन्हें थोक में छपवाकर देश भर में फैले इन प्रकाशकों के ऐजेन्टों के माध्यम से बिक्रय किया जाता है। इन पुस्तकों पर प्रकाशकों को लागत का कई गुना लाभ मिलता है जो कि आज के नजरिये से बुरा नहीं है। इन पुस्तकों की सर्वाधिक बिक्री रेलवे स्टेशनों व बस स्टेण्ड आदि पर ज्यादा देखने को मिलती है क्योकि 20 से 25 रुपये वाली मनोरंजक पुस्तक अगर किसी यात्री का यात्रा के दौरान भरपूर मनोरंजन करती है तो यह बुरा नहीं है। ऐसे में इन किताबों को पैसा वसूल किताबें कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। बिक्री के लिहाज से प्रकाशनों के लिये सफल कदम माना जा सकता है परंतु यह पुस्तकें सभ्य समाज का निर्माण नहीं करती है, क्योंकि इन पुस्तकों में दोयम दर्जे का साहित्य ही पाठकों को परोसा जाता है, उच्च साहित्य नहीं।

इस प्रकार साहित्यिक पुस्तकों के इतिहास पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि कुछ कालजयी किताबें जैसे-महान साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास- 'गोदान', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'गबन' एवं 'कर्मभूमि' आदि। डॉ. धर्मवीर भारती के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास 'गुनाहों का देवता' व 'सूरज का सांतवा घोड़ा' आदि। अमृता प्रीतम की पुस्तकें पिजंर' व 'रसीदी टिकिट' आदि। कमलेश्वर का बेहद लोकप्रिय उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' आदि। यहां सैकड़ों पुस्तकों का नाम लिया जा सकता है जो अपने पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रहीं। इन पुस्तकों की मांग में आज तक कोई कमी नहीं आई है तथा इनकी मांग निरंतर पाठकों के बीच अभी भी बनी हुई है। इन पुस्तकों के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पाठक इनको आज भी खरीद रहा है, क्योंकि यह सभी पुस्तकें इतनी लोकप्रिय पुस्तकें है कि इनका एक खासवर्ग हमेशा ही इनको पंसद करता रहा है। परंतु आज न ऐसे लेखक बचे है जो ऐसी किताबों की रचना कर सके और न ही ऐसे पाठक है जो इतनी महंगी किताबों को खरीद सके। पुस्तकों के संबंध में एक महान साहित्यकार ने कहा है कि भारतवर्ष में एक आम पाठक पुस्तकें पढ़ना तो चाहता है परंतु खरीदकर नहीं, मांगकर। इस तरह पैसा भी बच जाता है व पुस्तक लौटायी जाये यह भी जरूरी नहीं है।

पुस्तकों को आम जनमानस में लोकप्रिय बनाने के लिये शासन को भी इस दिशा में बेहतर कदम उठाने चाहिये ताकि हिंदी पुस्तकों की बिक्री संतोषजनक बनायी जा सके। इस संबंध में कुछ तरीके अपनाये जा सकते है-सर्वप्रथम पुस्तकों की कीमत किसी भी लिहाज से ज्यादा न हो, ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों के पैपरबेक संस्करण निकाले जाने चाहिये, बेहतर प्रचार प्रसार किया जाना चाहिये ताकि देश के कोने-कोने में संबंधित पुस्तकों की जानकारी सभी तक पहुंच सके। इन उपायों से हम किसी हद तक पुस्तकों की बिक्री संतोशजनक कर सकते है तथा एक सभ्य समाज का निर्माण कर सकते हैं। चूंकि पुस्तकों का पाठक एक आम आदमी होता है अतः पुस्तकों का उन तक पहुँचना आवश्यक है।

पुस्तकों की दशा व दिशा से पाठकों का अवलोकन कराने के पश्चात् देश भर में प्रकाशित हो रही छोटी-बड़ी लघु पत्रिकाओं की रोचक जानकारी से पाठकों का परिचय कराना आवश्यक हो गया है। हिंदी में प्रकाशित हो रही विभिन्न प्रकार की पत्रिकायें जिनमे मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, छःमाही एवं वार्षिक है, इन पत्रिकाओं की स्थिति व उनके बेहतर प्रचार प्रसार के संबंध में विचार किया गया है।

आज हिंदी में देश से कई छोटी बडी साहित्यिक पत्रिकायें प्रकाशित हो रही है एवं इन पत्रिकाओं का पाठक वर्ग भी बहुतायत में है जो इनको खरीदता व पढ़ता है इस दृष्टि से इनकी स्थिति सुदृढ़ कही जा सकती है। एक अनुमान के मुताबिक देश में आज 15 हजार से अधिक आई.एस.एस.एन. वाले जर्नल और शोध पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। भारत दुनिया में सर्वाधिक पंजीकृत पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित करने वाला देश है। चीन के बाद दुनिया भर में दूसरे स्थान पर सर्वाधिक प्रतियाँ भारत से ही प्रकाशित हो रही है। 31 मार्च 2014 तक देश में 94067 पत्र पत्रिकाएं पंजीकृत थे। इनमें से 8155 आवधिक और शेश 12511 दैनिक प्रकाशन है। इनमे हिंदी भाषा की पत्र पत्रिकाऐं सर्वाधिक है। उ.प्र. से सर्वाधिक पंजीकृत पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

यह पत्रिकायें आज व्यापक रूप सें प्रकाशित हो रही है व इनका क्षेत्र फैलता जा रहा है। पाठकों को पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में हो रही हर छोटी बड़ी घटनाओं की जानकारी हिंदी के नये पुराने रचनाकारों की लेखनी से प्राप्त होती रहती है। इस संबंध में स्व. राजेन्द्र यादव जी के अंतिम भाषण के रूप में दृश्यांतर मासिक पत्रिका में दर्ज लघु पत्रिकाओं के संबंध में विचारों को जानना जरूरी है वे कहते हैं कि-''...आप विश्वास कीजिए साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक सब मिलाकर पाँच सात पत्रिकाएं तो रोज मेरे पास आती है। ये वो हैं जो आती हैं, ना जाने कितनी और हैं जो नहीं आती। हिंदी में आज करीब दो से ढाई हजार पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही है और उनको पलटना तक मुश्किल है। इसलिये ये कहना कि हिंदी में पत्रिकायें नहीं है गलत है...मुझे लगता है कि पत्रिका में जो चीज विशिष्ट होती है वह है रचनायें।

कई पत्रिकाओं में हम एक ही तरह की चीजें पाते हैं। कोई भी विषय ले जैसे उपन्यास पर केन्द्रित पत्रिका 'उपन्यास' नाम से ही निकलती थी। जैसे आलोचना पर केन्द्रित पत्रिका है और कविताओं पर तो खैर जरूरत ही नहीं कुछ कहने की। मेरा खयाल है कि 50 पत्रिकाएं ऐसी हैं जो सिर्फ कविताओं से भरी रहती है जिन्हें कोई पढ़ता है या नहीं, मालूम नहीं। हर अच्छी पत्रिका में संपादक को एक लीक पर चलना होता है कि उसने 20-25 पन्ने कविता के रंग डाले और जान छूट गई, और कुछ सोचने की जरूरत ही नही।'' (5)

हिंदी में प्रकाशित होने वाली साहित्यिक लघु पत्रिकाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है क्योंकि एक तो इनकी कीमत कम होती है व आसानी से यह पत्रिकायें पाठकों को रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड एवं देश के प्रत्येक शहरों में खुले पुस्तकों व पत्र पत्रिकाओं के स्टॉल पर प्राप्त हो जाती है। अतः इन पत्रिकाओं की स्थिति पुस्तकों की अपेक्षा बेहतर ही मानी जा सकती है।

इन पत्रिकाओं की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि कम कीमत में यह पाठकों तक पहुँच रही है और इनके पाठकों को खरीदकर पढ़ने में कोई गुरेज नहीं होता है। इनकी बिक्री भी दिनों दिन संतोषजनक होती जा रही है। बढ़ती हुई महंगाई का असर इन पत्र-पत्रिकाओं पर देखने को मिला है तथा इनकी कीमतों में मूल्य वृद्धि भी हुई है। परंतु अभी भी कीमतें पाठक की जेब से बाहर नही है अतः इनकी बिक्री फिलहाल संतोषप्रद कही जा सकती है। देश में कई पुरानी पत्रिकायें बेहतर प्रचार प्रसार के अभाव में व आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने के कारण असमय बंद हो चुकी है। फिर भी हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का एक अपना बाजार है जो इनको जिंदा बनाये रखे हुये है।

आज महंगी पत्रिकाओं में उज्जैन से प्रकाशित मासिक साहित्यिक पत्रिका 'समावर्तन' का नाम लिया जा सकता है। इस मासिक पत्रिका की कीमत 150 रुपये मासिक व वार्षिक 1500 रुपये है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है क्यों कि इतनी कीमत में एक अच्छी पुस्तक पाठक को मिल सकती है तो वह पत्रिका क्योंकर खरीदना चाहेगा। लगता है इस पत्रिका का प्रकाशन अमीर पाठकों के लिये किया जा रहा है। आम पाठकों को इसे पढ़ने के लिये सोचना बंद करना पड़ेगा। इसके विपरीत देश में सस्ती पत्रिकायें भी प्रकाशित हो रही हैं जिनकी कीमत बहुत ही कम रखी गयी है। इस संदर्भ में हिमाचल प्रदेश शिमला से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का नाम लिया जा सकता है। इस पत्रिका के संपादक श्री वेद प्रकाश हैं। तथा इस पत्रिका की कीमत मात्र 15 रुपये मासिक व 150 रुपये वार्षिक रखी गयी है। यह एक लगभग 56 पृष्ठ की संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है जिसमें सभी विचारों को समाहित किया जाता है। यह पत्रिका कम कीमत में पाठकों का मार्गदर्शन करती है जो स्वागतयोग्य है, अतः ऐसी पत्रिकाओं का बेहतर प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिये व पाठकों तक ऐसी पत्रिकाओं की जानकारी पहुंचायी जानी चाहिये। पाठक स्वयं अपने स्तर से ऐसी लघु पत्रिकाओं का प्रचार प्रसार अपने साहित्यिक मित्रों को जानकारी देकर कर सकते है। यह एक ऐसा साहित्यिक कर्म होगा जिसमें पाठकों के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र का भला होगा।

वर्तमान में लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन को दो भागों में बांटा जा सकता है, एक शासकीय प्रकाशन दूसरा गैर शासकीय प्रकाशन। आज देश में बहुतायत में शासकीय पत्रिकायें नियमित रूप से निकल रही है जिनमें से कई पत्रिकाओं को सरकार द्वारा निःशुल्क वितरण हेतु रखा गया है, ऐसी पत्रिकाओं का उद्देश्य पाठकों के बीच हिंदी भाषा व साहित्य का बेहतर प्रचार प्रसार करना है। इन पत्रिकाओं को पाठकों का भी भरपूर प्यार व स्नेह मिल रहा है। इन पत्रिकाओं का संपादन का भार वयोवृद्ध वरिष्ठ मूर्धन्य साहित्यकार संभाल रहे है जिन्होंने तमाम जिंदगी पत्रकारिता व साहित्यिक क्षेत्र में गुजारी है। पत्रकारिता का संपूर्ण अनुभव इन पत्रिकाओं में मिलता है। पत्रिका को निरंतर गतिमान बनाये रखने के लिये सरकारी आर्थिक मदद भी प्राप्त होती है जिसके कारण ये पत्रिकायें पाठकों के बीच निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सहायक सिद्ध हो रही है। आज इन पत्रिकाओं की पाठक संख्या हजारों में नही लाखों में है जो इनके प्रकाशित होने का हर माह इंतजार करते है।

ऐसी पत्रिकाओं में कुछ बेहतरीन पत्रिकाओं के नाम लिये जा सकते है जो पाठकों पर अपनी पकड़ बनाये हुये हैं। हिंदी की डाइजेस्ट मासिक साहित्यिक पत्रिका 'नवनीत', जिसका प्रकाशन भारतीय विद्या भवन, क.मा. मुंशी मार्ग, मुम्बई से हर माह होता है। इस पत्रिका के संपादक विश्वनाथ सचदेव है। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा महाराष्ट्र तीन पत्रिकाओं का प्रकाशन करता है जिसमें पहली है-'बहुवचन' अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका, वर्तमान में इस पत्रिका के संपादक-अशोक मिश्र है। दूसरी पत्रिका है- 'पुस्तक-वार्ता' द्वैमासिक समीक्षा पत्रिका, एवं तीसरी पत्रिका है- 'हिन्दी लैग्वेज डिस्कोर्स राइटिंग' यह त्रैमासिक अंग्रेजी की पत्रिका है।

संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार 'संस्कृति' नामक सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि अर्द्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन करता है। इस पत्रिका के संपादक भारतेश कुमार मिश्र है जो संयुक्त निदेशक संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के पद पर पदस्थ है। यह पत्रिका पहले त्रैमासिक प्रकाशित की जाती थी और भारत सरकार द्वारा इसकी केवल 400 प्रतियाँ मुद्रित करवायी जाती थी। बीच मे यह पत्रिका कुछ समय के लिये बंद कर देनी पड़ी थी इसके बाद अक्तूबर 2000 से इस पत्रिका का पुनः प्रकाशन किया गया। इस बार पत्रिका को छमाही कर दिया गया। अब इस पत्रिका की

3000 प्रतियाँ मुद्रित करवायी जाती हैं जो देश के लगभग समस्त विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, लेखकों, देश विदेश के सुविख्यात विद्वानों को निःशुल्क उपलब्ध करवायी जाती है। इस पत्रिका की विभिन्न विशेषताओं के साथ-साथ यह भी एक विशेषता है कि यह पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान हजरतगंज लखनऊ द्वारा पत्रिका प्रकाशन योजना व बाल साहित्य सम्बर्धन योजना के अन्तर्गत 'साहित्य भारती' त्रैमासिक पत्रिका तथा बच्चों की प्रिय पत्रिका 'बालवाणी' द्वैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। साहित्य भारती त्रैमासिक पत्रिका की संपादिका डॉ. अमिता दुबे जी है। इस त्रैमासिक पत्रिका के प्रतिवर्ष चार अंक प्रकाशित किये जाते है। इसी संस्थान द्वारा बच्चों की प्रिय पत्रिका बालवाणी द्वैमासिक का प्रकाशन किया जाता है जिसका स्वागत बाल पाठकों एवं सुधी समीक्षकों द्वारा निरंतर किया जा रहा है। इस पत्रिका के वर्ष में छह अंक प्रकाशित किये जाते है।

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'मधुमती' के प्रबंध संपादक डॉ. प्रमोद भट्ट है। साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका 'वागार्थ', कोलकाता से प्रकाशित होती है जिसके संपादक एकान्त श्रीवास्तव व कुसुम खेमानी है। राष्ट्रभाषा हिदी एवं साहित्य के मूल्यों को समाज तक पहुँचाने के उद्देश्य से वर्ष 1927 में पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन प्रारंभ किया था तब से यह पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है। वर्तमान में इसके संपादक डॉ. विनायक पाण्डेय है। यह पत्रिका मध्य प्रदेश के इन्दौर जिले से प्रकाशित हो रही है।

हिमाचल प्रदेश शिमला से सूचना एवं जन संपर्क विभाग द्वारा प्रकाशित गिरिराज साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिका हिमप्रस्थ का प्रकाशन किया जाता है। 'हिमप्रस्थ' के संपादक वेद प्रकाश हैं जबकि 'गिरिराज' के संपादक श्री विनोद भारद्वाज हैं। यह साप्ताहिक वर्ष 1978 से प्रत्येक बुधवार को नियमित तौर पर प्रकाशित हो रहा है। भाषा विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा शिमला से ही एक और साहित्यिक द्वैमासिक पत्रिका 'विपाशा' का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका के मुख्य संपादक श्री अरुण कुमार शर्मा हैं। इस पत्रिका की एक प्रति का मूल्य 15 रुपये व वार्षिक 60 रुपये है। यह पत्रिका भी कम कीमत में पाठकों को भारतीय संस्कृति एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि से बखूबी परिचय करा रही है। आज जब सब जगह मंहगाई की मार से आम आदमी जूझ रहा है तब साहित्यक लघु पत्रिकाओं की बड़ी हुई कीमतो को चुनौती पेश कर 'हिमप्रस्थ' व 'विपाशा' जैसी पूर्णरूपेण साहित्यिक पत्रिकायें पाठकों की जिज्ञासाओं को शांत कर रही हैं, ऐसी पत्रिकाओं का सर्वत्र स्वागत होना चाहिये एवं प्रत्येक साहित्यिक प्रेमी पाठकों को एक बार अवश्य ही देखना चाहिये।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा द्वारा 'हिन्दुस्तानी जबान' नामक एक द्विभाषी पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। यह पत्रिका हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का रूप सामने रखती है। पत्रिका की प्रधान संपादक डॉ. सुशीला गुप्ता जी है एवं पत्रिका मुम्बई से प्रकाशित हो रही है। मुगलसराय चन्दौली से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'रेलमुक्ता' एक निःशुल्क पत्रिका है। पत्रिका के संपादक श्री दिनेशचन्द्र जी है। प्रकाशन विभाग नई दिल्ली द्वारा साहित्य व संस्कृति की मासिक पत्रिका 'आजकल' का प्रकाशन वर्ष 1945 से निरंतर किया जा रहा है। वर्तमान में पत्रिका की संपादिका फरहत परवीन है। आज इस पत्रिका के देश में हजारों नहीं बल्कि लाखों पाठक सदस्य हैं जो इस पत्रिका को खरीदते है।

म.प्र. हिंदी प्रचार सभा भोपाल से साहित्य की द्वैमासिक पत्रिका 'अक्षरा' प्रकाशित हो रही है। पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ. कैलाशचन्द्र पंत जी है एवं पत्रिका की संपादिका डॉ. सुनीता खत्री जी है। भारत भवन भोपाल से साहित्य की आलोचनात्मक त्रैमासिक पत्रिका 'पूर्वग्रह' प्रकाशित की जा रही है। पत्रिका के प्रधान संपादक रामेश्वर मिश्र 'पंकज' है। दूरदर्शन की मीडिया, साहित्य, संस्कृति और विचार की साहित्यिक मासिक पत्रिका 'दृश्यांतर' का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है। पत्रिका के संपादक श्री अजीत राय जी है। इस पत्रिका ने कम समय में ही पाठकों के बीच अपनी जगह बना ली है।

राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली से 'राजभाषा भारती' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका के संपादक श्री हरिन्द्र कुमार जी है। सहायक संपादक श्री राकेश शर्मा 'निशीथ' जी है। यह पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है। हिंदी अकादमी से त्रैमासिक पत्रिका 'इन्द्रप्रस्थ भारती' प्रकाशित होती है जिसका प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है व पत्रिका का संपादन डॉ. हरिसुमन विष्ट जी संभाल रहे है। साहित्य अकादमी नई दिल्ली से एक द्वैमासिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का प्रकाशन किया जा रहा है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय की पत्रिका 'भाषा' है जो अगस्त 1960 से नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है। यह पत्रिका दिसंबर 1991 तक त्रैमासिक थी। वर्ष 1992 के आरंभ से इसका प्रकाशन निरंतर द्वैमासिक पत्रिका के रूप में हो रहा है। पत्रिका का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है।

डॉक्टर हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर मध्यप्रदेश से राजभाषा उन्नयन के रूप में वार्षिक पत्रिका 'भाषा भारती' का प्रकाशन हो रहा है इस पत्रिका के संपादक वरिष्ठ रचनाकार डॉ. छबिल कुमार मेहेर जी है। इस पत्रिका का प्रकाशन पिछले दो वर्षो से हो रहा है तथा कम समय में ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में इस पत्रिका की महती भूमिका रही है। यह एक निःशुल्क वितरण के लिये है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली से द्वैमासिक

पत्रिका 'गगनांचल' का प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका के संपादक श्री अरुण कुमार साहू जी है। भारतीय पेट्रोलियम संस्थान की त्रैमासिक पत्रिका 'विकल्प' देश की एक ख्यातिप्रद पत्रिका के रूप में अपना नाम दर्ज करा चुकी है। डॉ. दिनेश चन्द्र चमोला के रूप में इसको एक ऐसा प्रतिभावान संपादक मिला है जो अपनी बेहतरीन उपस्थिति से इस पत्रिका को नई ऊँचाइयों पर ले जाने का दृढ़ संकल्प कर चुके हैं। यह एक निःशुल्क वितरण के लिये है।

सूचना एवं जनसंपर्क विभाग राजस्थान का मासिक पत्र 'राजस्थान सुजस' शीर्षक से प्रकाशित होता है, पत्रिका के संपादक श्री नर्वदा इंदौरिया जी है। नई दिल्ली से प्रकाशित 'इस्पात भाषा भारती' द्वैमासिक पत्रिका है, पत्रिका के संपादक श्री हीरा बल्लभ शर्मा जी है। यह वह शासकीय पत्रिकायें है जो अपनी सामग्री व कलेवर की वजह से पाठकों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज कराने मे पूर्णतः सिद्ध हो रही है। यहाँ पर मुख्य-मुख्य शासकीय लघु पत्रिकाओं का परिचय दिया जा चुका है। इन पत्रिकाओं के अलावा भी अन्य शासकीय पत्रिकाओं के प्रकाशन से इंकार नहीं किया जा सकता है।

कुछ गैर शासकीय मुख्य-मुख्य पत्रिकाओं के विषय में पाठकों को जानना जरूरी है जो अपनी उच्च साहित्यिक सुरुचिपूर्ण सामग्री के कारण पाठकों के बीच अपनी जगह बनाये रखने में सफल सिद्ध हो रही है। मुख्य-मुख्य पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार है- 'प्रेरणा', त्रैमासिक पत्रिका, 'परीकथा', द्वैमासिक पत्रिका, 'वर्तमान साहित्य', मासिक पत्रिका, 'पाखी', मासिक पत्रिका, 'कथाक्रम', त्रैमासिक पत्रिका, 'व्यंग्य यात्रा', त्रैमासिक पत्रिका, 'अभिनव इमरोज', मासिक पत्रिका, 'समीक्षा', त्रैमासिक पत्रिका, 'शोधदिशा', त्रैमासिक पत्रिका, 'सरस्वती सुमन', त्रैमासिक पत्रिका, 'दूसरी परम्परा', त्रैमासिक पत्रिका, 'कथादेश', मासिक पत्रिका, 'लहक', मासिक पत्रिका, 'संप्रेषण', त्रैमासिक पत्रिका, 'चिन्तन दिशा', त्रैमासिक पत्रिका, 'तद्भव' त्रैमासिक पत्रिका, 'परिन्दे', द्वैमासिक पत्रिका आदि। चूंकि देश से आज हजारों की संख्या में पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं। सभी का वर्णन यहां स्थानाभाव के कारण करना संभव नहीं है। पाठकों के बीच लोकप्रिय मुख्य-मुख्य पत्रिकाओं की एक छोटी सी जानकारी पाठकों के समक्ष रख दी गयी है।

आज कम्प्यूटर व इन्टरनेट के युग में कुछ पत्रिकायें सीधे बेवजाल पर भी प्रकाशित की जा रही है। यह भी एक सराहनीय एवं क्रांतिकारी कदम है, क्योंकि बेवजाल पर प्रकाशित होने से यह पत्रिकायें देश में ही नहीं बल्कि विदेशों मे बैठे प्रवासी भारतीय पाठक व साहित्यकार कभी भी कहीं भी आसानी से इन पत्रिकाओं को पढ़ सकते है। इस लिहाज से इन पत्रिकाओं के प्रकाशनों द्वारा विदेश में भेजने का डाक खर्च भी बच जाता है जो कि काफी ज्यादा होता है और पत्रिका भी काफी समय बाद पाठकों तक पहुँचती थी। अब बेवजाल पर सीधे प्रकाशित होने से पाठकों को काफी सुविधा हो गयी है। इस प्रकार बेवजाल पर पत्रिकाओं का प्रकाशन पाठकों के दृष्टिकोण से लाभप्रद ही माना जावेगा। बेवजाल पर प्रकाशित मुख्य-मुख्य पत्रिकाओं की जानकारी इस प्रकार हैः- 'गर्भनाल,' मासिक पत्रिका, 'साहित्य रागिनी', मासिक पत्रिका, 'समय' द्वैमासिक पत्रिका, 'वसुधा' त्रैमासिक पत्रिका, 'अपनी माटी' त्रैमासिक पत्रिका यह कुछ पत्रिकाओं के नाम हैं जो सीधे बेवजाल पर ही प्रकाशित होती हैं। इसके अलावा कई प्रकाशन बेवजाल एवं मुद्रित रूप में भी अपनी पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहें है।

समग्रतः यह आसानी से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष शुरू से ही आध्यात्मिक व साहित्यिक विधा का गढ़ रहा है जहाँ पर प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष के निवासी रामायण, महाभारत, श्रीमद् भगवद्गीता, वेद, पुराण आदि ग्रंथों का रसास्वादन करते चले आ रहे है, एवं यह सिलसिला आज भी बदस्तूर चालू है। साहित्यिक विधा हमेशा से ही पाठकों के बीच लोकप्रिय रही है। आज भी पाठकों के बीच कई हजार छोटी-बड़ी साहित्यिक पत्रिकायें व हिंदी पुस्तकें हमारे देश से प्रकाशित हो रही जो पाठकों के बीच लगातार अपनी उपस्थिति बनाये हुये हैं। जरूरत केवल इन पुस्तकों व पत्रिकाओं को बेहतर प्रचार व प्रसार की है ताकि जनमानस तक इनको सीधे पहुँचाया जा सके। सरकार को भी इस दिशा में कुछ निर्णय लेने होगे ताकि साहित्य की यह परंपरा हमेशा कायम रह सके।

संदर्भ :-

1 साक्षात्कार, आजकल मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जनवरी 2008, पृ. 33

2 पाठक से दूरी का सच, श्री शंकर शरण, जनसत्ता दैनिक पत्र, नई दिल्ली, दिनांक 26/10/2014

3 पाठक से दूरी का सच, श्री शंकर शरण, जनसत्ता दैनिक पत्र, नई दिल्ली, दिनांक 26/10/2014

4 मगर हिंदी में प्रकाशक हैं कितने, श्री राजकिशोर, जनसत्ता दैनिक पत्र नई दिल्ली, 02/11/2014

5 राजेन्द्र यादव का अंतिम भाषण, दृश्यांतर मासिक पत्रिका, सितम्बर 2013, दूरदर्शन नई दिल्ली, पृ. 71

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट, बायपास रोड, गांधीनगर, भोपाल, (म.प्र.)-462033
मोबा: 9826583363

आलेख

चिट्ठी का सफरनामा

● प्रकाश गौतम

जब हम डाक विभाग की बात करते हैं, हमारे मन में चिट्ठियां बांटते हुए पोस्टमैन, पत्रों, मनीऑर्डरों, लैटर-बॉक्सों और डाक घर की मोहर का विचार आता है। परंतु डाक विभाग का जो रूप आज हमारे सामने हैं, उसने विगत में कई रूप रंग बदले है और आज भी दिन-प्रतिदिन इस में नए-नए बदलाव आते जा रहे।

हमारे मन में यह विचार आता है कि पहला संदेशवाहक कौन था। इतिहास में इस बारे में कुछ भी लिखित में नहीं है। इस बारे स्मृतियों और पुराणों के माध्यम से भूतकाल में झांकना होगा तब हमें पता चलेगा कि देवर्षि नारद जी पहले संदेशवाहक थे। वे देवताओं, दानवों, शिवजी, ब्रह्मा जी, विष्णु जी के बीच संदेशों का आदान-प्रदान करते थे। संदेशवाहक के लिये पुराणों में 'दूत' शब्द का प्रयोग किया गया है। त्रैतायुग में रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि के द्वारा की गई। इसमें उल्लेख आता है कि भगवान राम ने अंगद को रावण के पास दूत बना कर भेजा था। द्वापर युग में पांडवों की ओर से भगवान कृष्ण कौरवों के पास दूत बन कर गए थे। इतिहास में वर्णित है कि विभिन्न सम्राट और राजा एक दूसरे के पास संदेश भेजने की लिये दूत का सहारा लेते थे। महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं जैसे अभिज्ञान शाकुंतलम, कुमारसंम्भव, मेघदूतम में संदेशवाहक पात्रों का खुल कर उल्लेख किया है। कौटिल्य ने अपनी रचना अर्थशास्त्र में संदेशवाहक के कर्तव्यों एवं संदेशवाहक के प्रति राजा के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया है। बाहरवीं शताब्दी में दिल्ली के चौहान वंश के प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज चौहान के दरबार के राजकवि चंद्र बरदाई के द्वारा राजा जय चंद के दरबार में दूत बन कर जाने का उल्लेख भी इतिहास में आया है। दूत अथवा संदेश वाहक को मारना या हानि पहुंचाना अपराध था।

मोहम्मद गौरी ने दिल्ली का शासन अपने गुलाम कुतुबदीन ऐबक को सौंपा। कुतुबदीन ऐबक (1206-1211) ने अपने शासन को चुस्त-दुरुस्त करने के लिये तथा शाही संदेश अपने सूबेदारों और सिपाह-सालारों तक पहुंचाने और उनसे संदेश प्राप्त करने के लिये हरकारे नियुक्त किये थे। इन संदेशवाहकों के माध्यम से वह गज़नी में मोहम्मद गौरी के सम्पर्क में रहता था। इसके बाद अल्लाऊद्दीन खिल्जी (1296-1316) के शासन काल में इस व्यवस्था में और सुधार हुआ।

शेर शाह सूरी के शासन काल (1540-1545) में उपरोक्त व्यवस्था में और अधिक सुधार हुआ। जब शेर शाह सूरी द्वारा कलकत्ता से लाहौर तक ग्रांड-ट्रंक-रोड का पुनर्निर्माण करवाया गया, तब उसने हर दस कोस की दूरी पर दो घुड़सवार हरकारे तैनात किये जो लिखित शाही फरमानों को तेजी से यहां से वहां पहुँचाते थे। हरकारों के लिए जगह-जगह सरायों का निर्माण शेर शाह सूरी ने करवाया। यदि देखा जाए तो आज जो डाक व्यवस्था है, उसने अपना आकार शेर शाह सूरी के शासन काल में ही लेना प्रारंभ किया था। मुगल काल में इस डाक व्यवस्था से विशेष छेड़-छाड़ नहीं की गई। सन 1616 में सर थोमस रो जहंगीर के दरबार में आया और उसने इंगलैड की महारानी की ओर से हिंदोस्तान में व्यापार करने की इजाजत मांगी जो दे दी गई। इसके साथ ही भारत में ईस्ट-इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश शासन के बीज बो दिये गए।

इतिहासकार इस बात पर एक मत नहीं है कि डाक शब्द की उत्पति कैसे और कहां से हुई। जहां तक अनुमान है, ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल में डाक शब्द हिंदी भाषा के डगर शब्द से बिगड़कर बना है जिसका मतलब होता है रास्ता या राह। डाक हरकारे जब ग्रांट-ट्रंक-रोड पर चलते थे, तब इन्हें डगरिया कहा जाने लगा जिसका अर्थ है डगर पर चलने वाले। बाद में डगरिया शब्द बिगड़ कर डाकिया बन गया। जो संदेश डाकिये ले कर जाते थे, उन्हे डाक कहा जाने लगा देश के अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में डाक हरकारे आज भी पैदल ही अंग्रेलों के साथ-साथ कई रियासतों ने भी इस शब्द को अपना लिया।

मध्यकाल में आम जनता में पत्र लिखने का रिवाज नहीं था। केवल राजे-महाराजे तथा संभ्रांत लोग ही संदेश भेजते थे। ये संदेश

या तो भोजपत्र पर या फिर रेशमी वस्त्र पर लिखे जाते थे।

सन 1766 में लार्ड क्लाईव ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की डाक व्यवस्था की शुरुआत की। सन 1774 में बंगाल प्रेसिडेंसी के अंतर्गत कलकत्ता जी.पी.ओ. की स्थापना लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज के द्वारा की गई। सन 1786 में मद्रास जी.पी.ओ. की स्थापना हुई जो मद्रास प्रेसिडेंसी में था। इसके बाद सन 1793 में बंबई जी.पी.ओ. की सथापना ईस्ट इंडिया कँपनी की बंबई प्रेसिडेंसी द्वारा की गई। इन तीनों प्रेसिडेंसियों में उस समय डाक व्यवस्था का प्रबंधन इन प्रेसिडेंसियों द्वारा स्वतंत्र रूप से किया जाता था। इसके अलावा भारत में सेंकड़ों रियासतें थी, जहां डाक व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थी। इससे पूरे देश में डाक व्यवस्था में एकरूप नहीं थी।

सन 1837 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक एक्ट पास कर के तीनों प्रेसिडेंसियों की डाक व्यवस्था को एकीकृत करके एक सिंगल डाक व्यवस्था की शुरुआत भारत में की गई। इसके अंतर्गत आम जनता भी अपने पत्र भेज सकती थी। सन 1853 में कलकत्ता से आगरा के बीच भारत की पहली टेलीग्राफ लाईन बिछी। इसी साल बंबई और थाने के बीच भारत की पहली रेल गाड़ी भी चली। उस समय भारत में वाईसराय लार्ड डल्हौजी था।

सिंधिया शासकों ने अपनी एक स्वतंत्र डाक व्यवस्था शुरू की थी, जिसे सिंधिया डाक का नाम दिया गया। सिंधिया डाक के अंतर्गत डाक टिकट भी जारी किये गए जिनका डाक के इतिहास में अपना अलग महत्त्व है। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। इस उपलक्ष्य में जय-हिंद सीरीज के तीन रंगीन टिकट डाक विभाग द्वारा जारी किये गए। इसके बाद तो डाक विभाग द्वारा आज तक हजारों रंग-बिरंगे डाक टिकट जारी किये जा चुके हैं। ये डाक टिकट दो प्रकार के है। पहली श्रेणी को डैफिनिटिव डाक टिकट है जो आम उपलब्ध टिकट हैं जिनका प्रयोग लोग पत्रों और अन्य डाक वस्तुएँ भेजने के लिये करते हैं। दूसरी तरह के टिकटों को फिलैटली के टिकट कहा जाता है। फिलैटली के टिकट बहुत ही आकर्षक रूप-रंग के, बहु-आयामी झलकियां बताने वाले, पशु-पक्षियों, नदियों-झीलों, त्योहारों, महान हस्तियों आदि के उपर किसी मौके विशेष पर केवल एक बार ही विशेष समारोह आयोजित करके जारी किये जाते हैं। कुछ लोगों में फिलाटेली के टिकट इकट्ठा करने का शौक जुनून की हद तक होता है। इस प्रकार के टिकटों के संग्रह की जिला, राज्य, राष्ट्रीय एवँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रदर्शनियां डाक विभाग व अंतर्राष्ट्रीय डाक संगठनों द्वारा आयोजित की जाती है। भारतीय राष्ट्रीय डाक म्युजियम नई दिल्ली में है। जहां तक विश्व के पहले डाक टिकट की बात है, वह पैन्नी-ब्लैक था जो इंगलैंड में सन 1840 में जारी हुआ था। सन 1874 में युनिवर्सल युनियन की स्थापना स्विट्जरलैंड के बर्न शहर में हुई। वर्तमान में इसके 192 सदस्य है। भारत इसका पहला सदस्य है। वर्ल्ड पोस्ट दिवस दिनांक 9 अक्तूबर को प्रति वर्ष मनाया जाता है।

15 अगस्त 1972 को डाक विभाग ने एक अनोखा प्रयोग किया जब छह अंकों से बने पिन-कोड की शुरुआत की गई। पूरे भारत को आठ पिन कोड क्षेत्रों मे बांट दिया गया। पत्रों और अन्य डाक वस्तुओं पर पते के अंत में पिन कोड लिखा जाने लगा, जिससे डाक वस्तुएं इधर-उधर न भटक कर सीधे प्राप्तकर्ता को मिल जाए। डाक विभाग का यह प्रयोग अत्यंत सफल रहा है। इससे पूर्व एक ही नाम के अलग-अलग डाकघर होने की स्थिति में डाक वस्तुएँ भेजी जाती रहती थी ताकि वे प्राप्तकर्ता को मिल जाए।

एक अगस्त 1986 को डाक विभाग द्वारा स्पीड-पोस्ट शुरू की गई। आज स्पीड-पोस्ट ने डाक विभाग को एक नये अयाम तक पहुंचा दिया है। सन 1990 में डाक विभाग द्वारा मुम्बई और चेन्नई में औटोमैटिक मैल प्रोसैसिंग सेंटर स्थापित किये गये जहां द्रुत गति से पत्रों की छँटाई होती है।

पहले डाक व तार विभाग एक ही विभाग था परंतु सन 1985 में भारत सरकार द्वारा बेहतर सेवाएँ देने के लिये डाक विभाग को अलग विभाग बना दिया गया।

यद्यपि सरकारी कर्मचारियों, सेना, पुलिस, सार्वजनिक क्षेत्रों के, सरकारी निगमों, निकायों, युनिवर्सिटियों, स्कूलों, कॉलेजों आदि के कर्मचारियों के लिये पहले ही डाक जीवन बीमा उपलब्ध था परंतु ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं को देखते हुए ग्रामीण डाक जीवन बीमा नाम की एक नई योजना की शुरुआत 24 फरवरी 1995 को डाक विभाग द्वारा की गई। यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यंत लोकप्रिय हो चुकी है। डाक जीवन बीमा और ग्रामीण डाक

भारतीय डाक

INDIA POST

देश के विकास में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में डाक विभाग ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। डाक विभाग जहां परंपरागत सेवाओं को दूरस्थ स्थानों तक पहुंचा रहा है, वहीं लघु बचत योजनाओं के माध्यम से लोगों का अर्थिक स्तर भी बढ़ा रहा है। साथ ही जहां लघु बचत योजनाओं के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के लिये डाकघरों के माध्यम से धन जुटाता है, वहीं दूसरी ओर राज्य सरकारें भी इससे लाभान्वित होती हैं।

जीवन बीमा योजनाओं के लिये डाक विभाग द्वारा एक अलग निदेशालय नई दिल्ली में बनाया गया है।

सन 1995 के बाद डाक विभाग द्वारा कई अलग-अलग प्रकार की योजनाएँ जैसे ई-पोस्ट, मीडिया पोस्ट, ई-मनीऑर्डर, इंस्टैंट मनीऑर्डर, डाईरैक्त पोस्ट, बिल मेल सर्विस, मोबाईल मनीऑर्डर, एक्सप्रैस पार्सल, बिजनैस पार्सल, आदि सेवाओं की शुरुआत की गई है। कुछ विदेशी कम्पनियों के साथ टाई-अप करके आई.एम.टी.एस. तथा मनी-ग्राम सेवाओं को डाक विभाग के माध्यम से चलाया जा रहा है कोई भी व्यक्ति जिसके नाम पर पैसा विदेश से आया है, डाकघर को अपना गुप्त कोड बता कर धन प्राप्त कर सकता है।

सन 1993 में डाक विभाग में उस समय एक नई क्रांति आ गई जब डाकघरों में कंप्यूटर लगने शुरू हुए। इसके बाद डाक विभाग के प्रधान डाकघर, मुख्य डाकघर और उपडाकघरों में हर प्रकार का काम कंप्यूटरों पर ही होना प्रारंभ हुआ। इससे सेवाओं की गुणवत्ता बढ़ी है। आजकल डाक विभाग के प्रधान डाकघर, मुख्य डाकघर और बहुत से उप डाकघर केंद्रीय बैंकिंग प्रणाली सी. बी. एस. से जुड़ चुके है और अगले आने वाले एक साल में सभी बड़े-छोटे डाकघरों के इस एकीकृत केंद्रीय बैंकिंग प्रणाली से जुड जाने की आशा है। सभी डाकघरों के कंप्यूट्रीकृत केंद्रीय प्रणाली सी.बी.एस. से जुड़ जाने के बाद डाक विभाग की काया ही पलट जाएगी।

डाक विभाग भारतीय सेना को भी अपना सक्रिय योगदान दे रहा है। डाक विभाग की एक शाखा आर्मी पोस्टल सर्विस के नाम से सशस्त्र सेना का एक अभिन्न अंग है। इसका प्रभारी मेजर जनरल रैंक का अफसर होता है। डाक विभाग के नियमित कर्मचारी एवँ अधिकारी प्रतिस्थापना पर आर्मी पोस्टल सर्विस में जा सकते हैँ।

डाक विभाग ने आजकल अपने ए.टी.एम. भी लगाने शुरू कर दिये है। डाकघर बचत बैंक खाताधारकों को ए.टी.एम. कार्ड जारी किये जाते है जिससे पैसा निकालने के लिए डाकघरों के काऊंटरों पर लम्बी लाईन में खड़ा नहीं होना पड़ता है। देश में पहला ए.टी.एम. चेन्नई में लगा था। हिमाचल प्रदेश में पहला ए. टी.एम. शिमला जनरल पोस्ट ऑफिस में लग चुका है। अन्य चुने हुए डाकघरों में भी ए. टी. एम. लगाने की प्रक्रिया चल रही है। निकट भविष्य में देश में एक डाक भुगतान बैंक भी बनने जा रहा है। ऐसी आशा की जाती है कि सभी डाकघरों के केंद्रीय कंप्यूटर प्रणाली पर आ जाने के बाद डाक विभाग एक नए ही रूप में नजर आएगा।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि देश के विकास में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में डाक विभाग ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। डाक विभाग जहां परंपरागत सेवाओं को दूरस्थ स्थानों तक पहुँचा रहा है, वहीं लघु बचत योजनाओं के माध्यम से लोगों का अर्थिक स्तर भी बढ़ा रहा है। साथ ही जहां लघु बचत योजनाओं के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के लिये डाकघरों के माध्यम से धन जुटाता है, वहीं दूसरी ओर राज्य सरकारें भी इस से लाभान्वित होती है क्योंकि राज्य सरकारों को केंद्र से ऋण उसके द्वारा लघु बचतों के माध्यम से जुटाए गए धन के निश्चित प्रतिशत के आधार पर मिलता है। वर्तमान में बचत बैंक, 5 वर्षीय आवर्ति जमा, 1,2,3 व 5 वर्षीय सावधि जमा, लोक भविष्य निधि खाता, मासिक आय योजना, 5 व 10 वर्षीय राष्ट्रीय बचत योजना, 100 महीने के किसान विकास पत्र, सुकन्या समृद्धि योजना में धन निवेश कर के लाभान्वित हो सकते हैं।

सन 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ था, तब पूरे भारत में मात्र 23,344 डाकघर थे। अब पूरे भारत वर्ष में विभिन्न श्रेणियों के 1,55,000 से ऊपर डाकघर है जो कश्मीर, हिमाचल, सिक्किम, अंडेमान-निकोबार जैसे दुर्गम क्षेत्रों सहित देश के विभिन्न भागों में स्थित है। जहां तक मानव संसाधन का प्रश्न है, युवाओं में डाक विभाग में सेवा करने की प्रबल लालसा देखी गई है। पदों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग स्तरों पर भर्ती संघ लोक सेवा आयोग, कर्मचारी चयन आयोग तथा स्थानीय स्तर पर की जाती है।

डाक विभाग जहां एक ओर सीधे-सीधे लाखों लोगों को रोजगार दे रहा है, वहीं अन्य लाखों लोग डाकघर द्वारा चलाई जा रही बचत योजनाओं के अभिकर्ता बन कर रोज़गार प्राप्त कर रहे हैँ। लाखों अन्य लोग परोक्ष रूप से डाक विभाग की सेवाओं से लाभान्वित हो रहे हैं।

डाक विभाग का नाम आते ही ईमानदारी की याद भी आ जाती है। डाक विभाग का जो विकास हुआ है उसका श्रेय डाक विभाग के ईमानदार, मेहनती कर्मचारियों और अधिकारियों को जाता है जो इस विभाग की परंपरागत छवि को बरकरार रखते हुए जी जान से इसे स्वावलंबी बनाने में जुटे हैं। निजि पत्र लिखने का रिवाज आजकल नहीं रहा है। ई-मेल और मोबाईल और कुरियर के इस जमाने में भारी प्रतिस्पर्धा का सामना डाक विभाग को करना पड़ रहा है परँतु इन सब से प्रतिस्पर्धा करते हुए भी डाक विभाग अपनी पुरानी परम्पराओं का निर्वहन बखूबी कर रहा है और अपने लिये नए क्षितिज ढूंढ रहा है। डाकघर जनमानस के बीच रचा-बसा है।

सीनियर पोस्टमास्टर, शिमला जनरल पोस्ट ऑफिस,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171001, मो. 94180-31951

गुजराती कहानी

गो-वर्धन महोत्सव

● मूल लेखक : **शिरीष पंचाल** अनुवादक : **जेठमल ह. मारू**

(गतांक से आगे)

'देवर्षि, इंद्र राजा कोप करेंगे तो आप सहायता करने वाले हैं?'

'अपना रक्षण करने में आप समर्थ हैं, इसलिए निश्चिंत रहिए। हां, यह आपको करिश्मा अवश्य दिखाएंगे, आपको भयभीत करेंगे क्योंकि यह उनका स्वभाव है। परंतु आखिरकार विजय पृथ्वी की और पराजय स्वर्ग की। स्वर्ग में तो अथाह अभिमान है। इसके अभिमान की एक कहानी सुनिए। एक समय काश्यप ऋषि ने यज्ञ के लिए सबको काम सौंपा। वालखिल्य ऋषिगण, तो अंगूठे जितने। गाय के खुर से बने गड्डे में पानी भर गया हो तो भी इन्हें यह पानी पार करने में महाकष्ट होता था। पर काश्यप ऋषि ने काम सौंपा तो क्या करें? ये ऋषि एकत्रित होकर पलाश की एक छोटी डाली उठाकर आ रहे थे। इंद्र को भी काम सौंपा गया। ये शक्तिशाली, लकड़ियों का बड़ा गट्ठर लेकर यज्ञस्थल जा रहे थे। रास्ते में वालखिल्यों को देखकर इन्होंने इनका मजाक उड़ाया, तो क्रोधान्वित ये ऋषि अन्य अधिक शक्तिशाली इंद्र के सर्जन की तैयारियां करने लगे। काश्यप ऋषि ने बामुश्किल वालखिल्यों को समझाया।'

'मुनिवर, आप कहते हैं तो भी हमें शंका रहा करती है। स्वर्ग के सामने पृथ्वी का कितना बल?'

'देखिए, एक काल में वाल्मीकि नाम के ऋषि थे यह तो आप जानते ही हैं। वे एक कथा लिखना चाहते थे, जिसमें समग्र गुण मूर्तिमंत हुए हों ऐसे व्यक्ति की कथा। ऐसा गुणवान कोई देव तक उनको नहीं मिला। आखिरकार मनुष्यों में से उन्हें रामचंद्र मिल गए इसलिए उनकी कथा लिखने के लिए वे तैयार हो गए। यहां भी देखिए, तीनों लोकों में बोलबाला किसका?'

युवा यादव नारद मुनि की बात सुनकर उत्साह में आ गए। ऐसा हर्ष इनके हृदय में व्याप गया कि कृष्ण को ऊंचा उठा लेकर गोल-गोल घूमने लगे।

कृष्ण की दृष्टि विशाखा पर पड़ी। उसकी आंखों में से अश्रुधारा बहती थी। विशाखा एक तो चंपकवर्णी और इसमें सूर्य प्रकाश, अश्रु या जगमगाते मोती? उसके हृदय की प्रसन्नता आंखों में से छलक-छलक कर प्रकट होने लगी थी।

सारे यादव वहां से विदा हुए तो विशाखा ने कृष्ण की ओर देखा और वह कावेरी से लिपट गई। कृष्ण ने बांसुरी होठों पर टिकाई और स्वर-गंगा बहने लगी। शाम का समय होने वाला था, प्रातः गया हुआ गायों का समूह गोधूलि के समय वापस लौट रहा था, उनके कानों में कृष्ण का वेणुनाद सुनाई दिया। गायें बछड़ों सहित पूंछें उछालतीं, चौकड़ी भरतीं कृष्ण के आसपास समूह के रूप में आ खड़ी रहीं। कृष्ण सभी गायों के सामने दृष्टि डालते-डालते बांसुरी बजाए जा रहे थे। इसमें गायों का रंभाना मिलता जाता था। कृष्ण विशाखा को लेकर आगे बढ़ने लगे और गायें उनके पीछे-पीछे।

000

जहां धरती की धूल पहुंचती थी, जहां केवल कायाएं थीं, छायाएं न थीं, जहां नेत्रों में अश्रु आते न थे ऐसे स्वर्ग में, देवताओं की सभा में उर्वशी के कनक उज्ज्वल चरणों के छंदोलय से सभी उन्मत्ते, चंचल बन रहे थे। स्वर्ग के अधिपति देव ऐश्वर्यपूर्ण महालय में सिंहासन पर आरूढ़ होकर अपनी सत्ता से छलक-छलक होते चारों दिशाओं में दृष्टिपात करते थे। मन में अपनी सत्ता के प्रभाव तले न आए हुए क्षेत्रों का विचार-विमर्श चालू था। परंतु गहरे-गहरे कहीं कोई खटका था इसीलिए ही उर्वशी के लय-ताल, गंधर्वों के गायन-वादन चित्त को आनंद देते न थे। वे अशांति अनुभव करते थे, किसी भी तरह से यह घबड़ाहट दूर होनी चाहिए।

इतने में नृत्य का अंतिम लय-ताल सुनाई दिया और चारों दिशाएं आनंद से झनझना उठीं। इंद्र उर्वशी के अतिप्रसन्न मुख के सामने ताक रहे थे और तभी उनके कानों में देवर्षि नारद का वीणा वादन सुनाई दिया। सहसा खड़े हो उन्होंने और सभी देवों ने भी ऋषिवर का सत्कार किया, वंदन किया।

नारद ऋषि ने इंद्र के मुख के सामने देखा। कुछ क्लांति छाई हुई लगी।

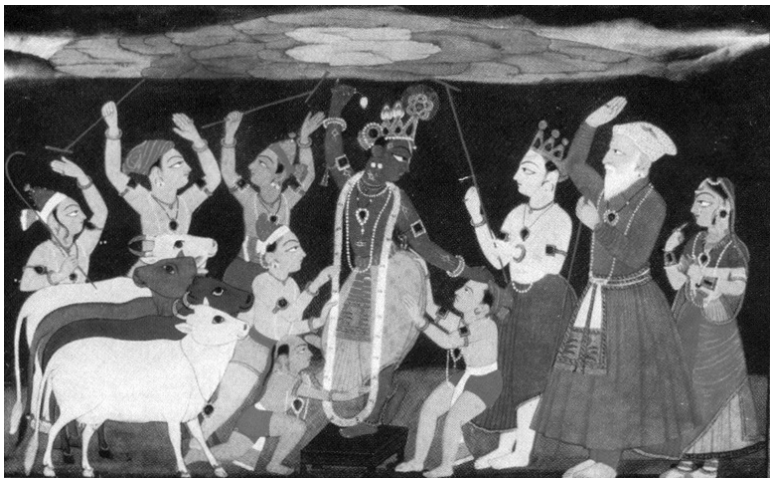

'शचिपति, गंधर्वों के यह मधुर गान और उर्वशी-मेनका के नृत्य क्यों आपको प्रसन्न नहीं कर सकते?'

'देवर्षि, किसी अनजाने भय ने जैसे मुझे घेर लिया है। कुछ भनक लग रही है पर हमको किसी को इसका संकेत मिलता नहीं। कहीं तप चलता होगा? कहीं कोई मेरी सत्ता के विरुद्ध, स्वर्ग के सामने सिर उठाने की कोशिश कर रहा होगा?' इंद्र के स्वर में ग्लानि लगती थी।

'आपका भय सही है। वृंदावन में शताब्दियों से चली आ रही इंद्रपूजा अब नहीं होगी।'

'तो?'

'वहां इंद्रपूजा के बदले गो-वर्धनपूजा होगी।'

उनचास पवन एक साथ इंद्र के कर्णद्वार के आगे सरसराहट करने लगे। उनका हाथ सहसा वज्र पर आ गया। उनके सहस्रों नेत्रों में से पिंगलवर्णी अग्नि ज्वालाएं प्रकट होना चाहती थीं। परंतु देवर्षि की उपस्थिति में मन पर संयम रखकर पूछा, 'देवर्षि, सहसा यह पूजा बंद करने का कारण क्या? कौन है इसके मूल में?'

'कृष्ण के सिवाय वहां दूसरा कौन हो? वह पूरा विद्रोही है, छोटी उम्र में भी शूरवीर है। कितने-कितने राक्षसों को उसने पराजित किया। आखिर में उसने ही तो कालीय नाग को छका कर समुद्र में वापस भेज दिया।'

'हां, हमारी अप्सराएं भी उसी की कामना करती हैं। रंभा कहती है कि मैं धरती पर जाऊं और कृष्ण की बांसुरी के स्वर पर नृत्य करूं। परंतु आखिर यह है कौन? कौन है यह? ग्वालिया है ग्वालिया। और एक ग्वालिये की यह धृष्टता? इसके पास है क्या? बताइए तो सही, ऋषिवर, इसके पास क्या है? और मेरे पास क्या नहीं?'

'हां... हां... इसके पास है क्या?' दूसरे देवों ने भी स्वर में स्वर मिलाया।

देवर्षि क्षण-दो-क्षण इंद्र के मुख के सामने देखते रहे। अणु-अणु में से कुछ उछल-उछलकर बाहर निकल आने के लिए प्रयत्नशील था। इसकी ज्वालाएं अजेयों को मात देकर दीन, असहाय पंगुओं को भस्मीभूत करना चाहती थीं।

'वैसे देखो तो इसके पास कुछ नहीं। जो कुछ संपत्ति है, ऐश्वर्य है यह सारा आपके पास में है। इसके पास तो केवल धूल है, धूल में से यानी कि मिट्टी में से उगते बांस और उनसे बनती है बांसुरी। कृष्ण के पास में बांसुरी है।'

'हंऽऽ...' समग्र वातावरण को कंपा डालती इंद्र की हुंकार सुनाई दी। 'बांसुरी' लकड़ी से बनाई हुई बांसुरी ही न?'

'देवराज, यह बांसुरी सुनने जैसी है। इसके स्वर पर मोर नृत्य आरंभ करते हैं, हिरनियां कृष्णसार मृगों के साथ में वृंदावन की दिशा में कुलांचें लगाती हैं, गोपियां घर का काम छोड़कर बंशीव चली जाती हैं।'

'देवर्षि, आप तो त्रिलोक में विहरते हैं, संगीत विशारद हैं, गंधर्वगान और अप्सराओं के नृत्य सुने हैं, देखे हैं फिर भी आपको एक ग्वालिए की बांसुरी अधिक प्यारी लगती है?'

'हां, इस ग्वालिए की बांसुरी प्यारी लगती है, अत्यंत प्यारी लगती है। सुनिए... इसका मधुर वेणुनाद सुनाई दे रहा है। स्वर धरती पर प्रकट होते हैं और बहते हैं ठेठ स्वर्ग तक... शक्रराज, स्वर्ग के आपके संगीत-नृत्य चाहे जितने उत्कृष्ट हों, चाहे जितने शास्त्रोक्त हों, पर धरतीवासियों के नृत्य-संगीत की तुलना तो नहीं कर सकते। आपके पास केवल अमृत है, इनके पास में अमृतमय मृत्यु है, आंसू हैं। इस संगीत-नृत्य को स्पर्श होता है मृत्यु का और आंसू का। यह स्पर्श इनके संगीत-नृत्य को शाश्वत बना देता है और आपका संगीत-नृत्य बन जाता है नश्वर। स्वर्गाधिपति, आपके पास सत्ता है और इस सत्ता की अग्नि आंसुओं के स्रोत को जला डालती है। आप तो विहार करने अनेक बार धरती पर जा पहुचंते हैं, कोई भी धरतीवासी कभी भी विहार करने स्वर्ग में आया?'

'ऋषिवर, आप कैसे भूल गए कि यह शक्ति मनुष्य में नहीं। हम इस ब्रह्मांड में जी-चाहे वहां विहार कर सकते हैं।'

'देवराज, पृथ्वीवासियों को स्वर्ग की अनिवार्यता ही नहीं। इनको तो दूसरों की आंखों में भी स्वर्ग दिखता है। धरती के कण-कण में ब्रह्मलोक है, वैकुंठ है, कैलास है।'

'नारदमुनि, क्षमा करना। इस त्रिलोक पर जो राज्य करना चाहे उसको भावुक होना रास नहीं आता। बात-बात में पृथ्वीवासियों की तरह अश्रुपात करना हम देवताओं को शोभा नहीं देता। हम आंसुओं से कभी प्रसन्न होते नहीं, हमें तो भोग चाहिए,

नैवेद्य चाहिए। आंसुओं से प्रसन्न होने वाले आशुतोष कैलास में बसते हैं, स्वर्ग में नहीं। हमें प्रसन्न न करें वे तो हमारे नित्यशत्रु हैं, हमारी पूजा न करें इनके लिए मेरा वज्र है, अग्नि के पास में सिंदूरवर्णी ज्वालाएं हैं, वरुण के पास में प्रलयंकर जल है, वायु के पास में उल्काओं को घसीट ले जाए, ऐसे झंझावात हैं। कृष्ण को और वृंदावनवासियों को आखिरकार हमारी शरणागति स्वीकार करनी ही पड़ेगी। वे लोग गायों की जिस समृद्धि पर अभिमान करते हैं ये सारी हमारे प्रति आभारी हैं। इतना ही नहीं, मनुष्यों का अस्तित्व तक हमारा आभारी है। इसका ऋण भार इनके सिर पर है।'

इंद्र ने बहुत कुछ कह दिया था फिर भी इनको अपेक्षा थी कि कोई देव मेरी बात आगे बढ़ाएगा परंतु थोड़ी प्रतीक्षा करने के बाद भी कोई नहीं बोला इसलिए इंद्र ने ही बात आगे चालू रखी।

'देवर्षि, आपकी बात से लगता है कि आपको वृंदावन के कृष्ण का अति निकट का परिचय है। मिले तो कहना कि इंद्र जितनी कृपा बरसा सकता है उसकी अपेक्षा अनेक गुनी अवकृपा भी कर सकता है। मेरे क्रोध के आगे मेरा वज्र मक्खन जैसा। शंकर त्रिलोचन और मैं सहस्रलोचन और यह प्रत्येक लोचन नीलकंठ का तीसरा लोचन बन सकता है। चाहूं तो इन हजार-हजार आंखों से मैं विष फैला सकता हूं। मेरी आज्ञा हो तो सूर्य चंद्र हो जाए और चंद्र सूर्य हो जाए।'

'देवेंद्र, आपके शब्द-शब्द से अहंकार प्रकट होता है। भूल गए उस यक्ष को? एक त्रण को भी कोई आंच पहुंचा सका था? आपकी लाख सावधानी के बावजूद भी गरुड़ स्वर्ग में से अमृत ले गया तब क्या रोक सके थे उसको? तो फिर कृष्ण का आप क्या कर सकने वाले हैं? आपका विनाश न हो यह देखना।'

'हमारा विनाश? देवर्षि, हम अमर हैं अमर।'

'इंद्र, मैं तो आपको बुद्धिशाली मानता था। मैं स्थूल विनाश की बात नहीं करता। पृथ्वीवासियों के हृदय में से आप बहिष्कृत हों यह भी विनाश नहीं? वृंदावन में आपकी पूजा नहीं हो सकती।'

'सुन रहे हो न देवताओ! एक ग्वालिया स्वर्ग को चुनौती दे रहा है। सजाओ अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्र।'

000

वृंदावन के एक सामान्य ग्वाले ने त्रिभुवन स्वामी इंद्र को चुनौती दी और इंद्रपूजा का बहिष्कार किया इसलिए वे बहुत कुपित थे। 'ऐसी चुनौती देने वाला कोई राजा हो तो समझ में आता है, यह तो नितांत सामान्य व्यक्ति, गायें चराना जानने वाला... अति तुच्छ व्यक्ति विद्रोह करने वाला हो गया है और क्या? मैं अपना क्रोध त्याग नहीं सकता। सांप अपना विष त्याग देगा? सिंह मांसाहार त्याग देगा? समुद्र अपनी तरंगें, आकाश अपनी नीलिमा, चंद्र अपनी शीतलता त्याग देगा? भिखारी-भिखमंगे एकत्रित होकर मुझे... मुझे पथभ्रष्ट करना चाहते हैं! यह ग्वाला नहीं जानता कि उस स्त्री के पेट में पैठ कर मैंने अपने प्रतिस्पर्धी बनना चाहते गर्भ के सात टुकड़े कर डाले थे, उस प्रत्येक टुकड़े के पुनः सात-सात टुकड़े कर डाले थे, आखिरकार मुझ से क्षमा मांगी तब इन उनचासों को मेरे साथी के रूप में स्वीकार किया था।'

इंद्र को तो गोवर्धन पर्वत के कण-कण में, निकट में से ही बह रही रम्यघोषा कालिंदी के अलसमंथर प्रवाह में अपने प्रतिस्पर्धी और शत्रु ही दिखते थे। जिस तरह पर्वत-शिखरों का प्रतिरोध करके, वृक्ष पर वज्र का आघात करके, समस्त शिखरों पर के आवरण दूर कर पानी को मुक्त किया था और प्रकृति को आज्ञांकित बनाई थी उस तरह सभी को, जड़-चेतन को, वनस्पति व प्राणी सृष्टि को वे आज्ञांकित बनाना चाहते थे। इंद्र हाथ में वज्र लेकर दसों दिशाओं में घूमने लगे : कहां है कृष्ण? कृष्ण कहां है? इस वज्र से अब तक कितने ही पर्वतों को चूर-चूर कर डाला है। आज तुम्हारे दर्प-पर्वत को भी चूर-चूर कर डालूंगा। वृंदावनवासी त्राहिमाम्-त्राहिमाम् कहने लगेंगे। सहायता के लिए तुम्हारे पास कोई नहीं आएंगे, सभी मेरे पास में आएंगे। तुम्हारे पास से उन्हें मृत्यु मिलेगी और मेरे पास से जीवन। मृत्यु चाहे जितनी सुभग हो और जीवन चाहे जितना दुर्भाग्यमय या यातनामय हो तो भी मनुष्य तो जीवन ही चाहेगा। तुम्हारे गोवर्धन पर्वत की रज-रज कर डालूंगा। उसकी रज में से, उसके टुकड़ों में से मेरे पृथ्वीवासी अनुचरों के निवास बनवाऊंगा, तुम्हारे ही सामने। तुम देखते रहना।

000

इंद्र ने उनचास पवन और बारह ही मेघों को वृंदावन पर टूट पड़ने की आज्ञा दे दी। वातावरण के रंग बदलने लगे थे। सृष्टि की रचना हुई थी तब कुछ भी स्थिर न था। कभी पर्वत के स्थान पर समुद्र और समुद्र के स्थान पर पर्वत बन जाते थे। नदियां अनेक बार अपने मार्ग बदला करती थीं। शेषनाग ने पृथ्वी को मस्तक पर धारण किया था, इस समय भी जाने यही हो रहा हो ऐसा लगा। एक समय अमृतपान कराते समय देवताओं के रूप में आ पहुंचे राहू और केतु की जानकारी चंद्र और सूर्य ने प्रकट कर दी थी। इसका वैर लेने के लिए राहू-केतु और सूर्य को ग्रस जाने के लिए तैयार हुए थे, 'मैं अकेला किसलिए यह सब कुछ सहूं' यों सोचकर सूर्य ने अपना तेज अनेक गुना बढ़ा दिया तब जो उल्कापात हुआ था वैसे उल्कापात की जैसे तैयारी होने लगी।

पर वृंदावनवासियों को इसकी कुछ भी गंध नहीं आई। इन्होंने वृंदावन के बाहर पैर रखा न था। गायों को कोई गोचर लोक गया न था। सूर्योदय होने से पूर्व ही समग्र वृंदावन उत्सव की तैयारी में लग गया था। घर-घर आम्रपर्णों के, आसोपालव के तोरण लटकने लगे थे। रात को तैया करके रखी हुई जुई, जाई और कुंद पुष्पों की मालाएं घरों के प्रवेश द्वारों पर ही नहीं, गोपवनिताओं के केशों में ही नहीं पर छोटे-छोटे बछड़ों के गलों में भी शोभा देती थीं।

ब्राह्मणों, ऋत्विजों ने यज्ञ-वेदियां तैयार कर रखीं थी। सभी ने नैवेद्य भी तैयार कर दिए थे और फिर भी किसी की आंखों में इसका रज मात्र भी भार लगता न था।

सभी महोत्सव के लिए आ पहुंचे थे। ग्राम्य विस्तारों से हुनरमंद अपनी कला-कारीगरी लेकर आए थे, क्रय-विक्रय करने वाले अपने-अपने मंडपों में तरह-तरह की वस्तुएं प्रदर्शित करते बैठे थे। आसपास के नगरजन भी यह गोवर्धन महोत्सव कैसा होगा यह देखने-जानने आ पहुंचे थे और उन्होंने तय किया था कि अब वे अपने वहां भी ऐसा महोत्सव मनाएंगे।

उषाकाल में वातावरण शांत और निर्मल था, हवा अनुकूल होकर चल रही थी। आम्रवृक्षों पर से अभी तक आम्र उतारे नहीं गए थे, नीचे गिरे हुए आमों में से भले-भले वैरागियों, त्यागियों का मोहभंग हो ऐसी सुगंध चारों दिशाओं में फैल रही थी। सारे ही आश्वस्त थे, आमोद-प्रमोद में लीन थे। ऐसा उत्सव कोई एक दिन थोड़े ही चलने वाला था? तीन-तीन दिन चलने वाला था।

कृष्ण पौ फटने से पहले ही खुले आकाश के नीचे आ गए थे। अंधेरे की कमोबेश रेखाएं वातावरण में छाई हुई थीं। सहसा कृष्ण की दृष्टि आकाश पर गई। सिर पर तारे दिखते न थे। धरती पर जिस तरह पुष्प महकते हैं उसी तरह आकाश में तारे महकते हैं। कहां गए ये महकते तारे? तभी धीरे-धीरे उजाला होने लगा। कृष्ण ने आंखें मूंद लीं। समग्र वातावरण जैसे श्वास-में-श्वास बनकर भीतर प्रविष्ट हो रहा था। बंद आंखों के सामने काले रंग में से जामुनी लाल रंग प्रकट होने लगा। वे चौंक उठे। हवा की गति में सहसा परिवर्तन आया, वहां उपस्थित लोगों को प्रारंभ में तो कोई अंदेशा हुआ नहीं। कृष्ण को इस परिवर्तन में कुछ अपरिचितता लगी। मंथर गति में से तीव्र बनती जाती गति के पीछे स्वाभाविकता न थी। यह हवा पल्लू को फरफराने वाली न थी, अश्वत्थों (पीपल) की कोंपलों को हिलाने-डुलाने वाली थी। कृष्ण को प्रतीति हुई कि यह पवन अब विशाल वृक्षों को जड़-मूल से उखाड़ डालने वाला था। इस पवन में आर्द्रता भी लगती थी। आंखें खोलीं तो आकाश में सिंदूरिया रंग जमते देखा, जो सभी वृक्षों को, धरती को रंग रहा था। यों तो साधारण दिन में सारा कैसा शोभा देता, पर आज इसमें से किसी अपरिचितता का संकेत प्रकट होता था। कुछ अस्वाभाविक था। यह सिंदूरिया रंग क्यों लहू में कंपकंपी फैला था। तभी धीरे-धीरे यह रंग भूरा हो गया और देखते-ही-देखते ये भूरे से काला होकर सर्वत्र छा गया।

ऐसा होने पर भी उन्होंने बांसुरी होठों पर लगाई और विशाखा की स्मिवती आंखें कहती थीं : 'कृष्ण, मेरे लिए तो बांसुरी के सिवाय जगत मिथ्या हो गया, यदि बिजली कौंधे और कड़कड़ाहट हो तो भी मुझे यह न दीखे, न ही सुनाई दे। मैं सुनती रहूंगी केवल यह बांसुरी। इस धरती पर हो रही बरसात की सुगंध नहीं आती, इस जल का स्पर्श नहीं होता, मुझे तो केवल वेणुनाद ही सुनाई दे रहा है। स्वर के दर्शन होते हैं। इसी की सौरभ मुझे उन्मत्त कर डालती है। जैसे मेरी जिह्वा इस स्वर को ग्रहण करती है, मैं घूंट-घूंट में इसका पान करती हूं और समूचा ब्रह्मांड मुझ में प्रवेश करता है। मेरे रुधिर में इसका लय प्रवेश करता है। मेरे उच्छवास में से बाहर आया हुआ यह स्वर पुनः तुम्हारे स्वर में घुल जाता है। कृष्ण, एक बात पूछूं?'

'पूछ न!'

'यह तुम्हारे पास केवल बांसुरी है, इसका कोई वैभव नहीं, सरस्वती की वीणा के तार होते हैं, इसके तो तार तक नहीं। इंद्र के पास तो कला के सिरजनहार गंधर्व हैं, अप्सराएं हैं इन्हें अनुभव करने वाले देवता हैं और तो भी क्यों ये अपूर्ण हैं?'

'तू तो जानती है देवता विलासी हैं, सुरापान करते-करते संगीत-नृत्य का आनंद लेते हैं। कला विलास नहीं। विलास स्वर्ग में शोभा देता है, कर्म शोभायमान होता है उदार रमणीया पृथ्वी पर। मेरी बांसुरी सीधी-साधी है। है तो छेद वाली, वज्र की तरह यह कोई ठोस नहीं, खोखली है। सृष्टि में बह रही हवा को मेरे भीतर उतारती है, रंध्र-रंध्र में और कोष-कोष को हवा छूती है और सब कुछ ही जीवंत हो जाता है, निरा चैतन्यमय, परंतु यह केवल मुझ में ही सीमित रहना चाहती नहीं। सृष्टि ने जो प्रदान किया है, इसे लेकर ज्यों-का-त्यों तो बैठे कैसे रहा जा सकता है, इसलिए इसको मैं बाहर बहा देता हूं। यों तो मेरे होंठ इस काष्ट के टुकड़े को छूते हैं, पर इस काठ के टुकड़े में प्रवेश करते हैं मेरे प्राण, सृष्टि समस्तज के प्राण और फिर मैं इस प्राण का रूपांतर स्वर में कर देता हूं। यह रूपांतर शक्ति प्रदान करता है। इसी कारण ही मुझे प्रतीति है कि मेरी यह बांसुरी वज्र का सामना कर सकती है। इसे मैं न बजाऊं तो अकुला जाता हूं, तुझे भी यह अस्वस्थ कर डालती हैं तुम सबकी संवेदनाएं, इस धरती में से उग निकले हुए बीजांकुर, आंवल-बबूल से लेकर पारिजातक तक के वृक्ष, आकाश में उड़ते शक्करखोर से लगाकर बाज-गिद्ध तक के पक्षी, जल में हिलोरे मारते अंखफोड़वा-मगरमच्छ जैसे जलचर, कीट सृष्टि इन सबका लय मेरे लहू में लीन होता है, फिर स्वर प्रकट होते हैं।'

'मेरे विचारों का, मेरी उलझनों का तू प्रत्युत्तर दे रहा हो ऐसा लगता है।' कहते-कहते विशाखा चुप हो गई। आसपास देखने लगी, वहां तो केवल आनंदोत्सव की तरंगें थीं। इनके उत्साह, आनंद के पार से कुछ आ रहा था। पर क्या था यह? कृष्ण ने जो बोला वह इस रहस्यमय अनागत को पाकर?

'कृष्ण, कृष्ण... किसी अमंगल के चिह्न लगते हैं। यह फर-फर बहती हवा बदल गई है, कोई आसुरी तत्त्व आक्रमण करने आ रहा हो ऐसा लगता है। तुम्हें तो लग ही रहा है न?'

'पर तू तो कहती थी कि मुझे भय लगता नहीं।'

'ऐसा भय तो जो भीरू हो उसको लगता है। मैं भीरू नहीं'

'फिर भी इंद्र के इस कोप का कुछ निवारण तो करना पड़ेगा

न!'

'एक सरल उपाय है।'

'कौन-सा?'

'वृंदावनवासियों को इंद्र को वचन देना पड़ेगा कि भविष्य में वे कभी भी उन्नत मस्तक नहीं जीएंगे, इंद्र के चरणों के समक्ष मस्तक झुकाकर रहेंगे... कई यादव तो क्षमा मांगने के लिए तत्पर हैं। दुष्ट कंस के त्रास को सहन कर रहे हैं इसी तरह देवों के त्रास को भी सहन कर लेंगे।'

कृष्ण ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। आंखों-आंखों से ही दूसरा विकल्प पूछा।

'दूसरा मार्ग है तुम्हारे पास में। सारे ही कहते हैं कि तुम्हारे पास में दिव्य शक्तियां हैं।'

'दिव्य शक्तियां तो स्वर्गवासियों के पास में। हमारे पास में है तो केवल मानव शक्ति।'

'जो भी हो वह, कोई उपाय कर न!'

'एक समय ब्रह्मा से कोई अपराध हो गया। उन्हें दंड देने की शक्ति किसी एक देव में नहीं थी इसलिए सारे देवों ने सम्मिलित होकर प्रत्येक देव से सत्त्व लिया और महारुद्र का सर्जन किया। यह महारुद्र यानी कि पशुपति। यह सामूहिक सर्जन था। इसी तरह ही इंद्र के कोप से बचने के लिए मुझ अकेले की शक्ति नहीं चल सकती। सबकी शक्ति एकत्रित करनी पड़ती है। तब ही महाशक्ति बनेगी। देख, सामने रही यह महाशक्ति।'

विशाखा ने देखा तो महार्णव गर्जना कर रहा था।

प्रातःकाल विशाल मंडप में सबको एकत्रित होना है ऐसी सूचना कृष्ण ने दी थी इसलिए छोटे-बड़े सभी वहां एकत्रित हुए, फिर ऋत्विजों की उपस्थिति में कृष्ण ने गोवर्धनपूजा का आरंभ वेणुवादन से किया। कृष्ण के वेणुवादन की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी, इसलिए इस वादक को देखने और वादन सुनने के लिए आए हुए लोग रोमांचित हो उठे। पवन इन वादन आंदोलनों को आकाश की ओर ले जाता था और वृक्षों के पत्ते, जड़-मूल द्वारा इसकी ध्वनि जैसे पाताल गंगा को आंदोलित करने के लिए प्रयत्नशील थी। गोवर्धन पर्वत की तलहटी में वर्तुलाकार में कदंब के पांच विराट वृक्ष खिले हुए थे। विशाखा को इन वृक्षों का बहुत आश्चर्य था। पिछले कुछ समय से वे असामान्य तरीके से बढ़ रहे थे। आरंभ में इनके पत्तों में से छनकर आते सूर्य चंद्र के प्रकाश धरती पर सुंदर छटा बिखेरते थे, धीरे-धीरे एक-एक किरण धरती पर पड़नी बंद हो गई थी। उसने कृष्ण को एक-दो बार पूछा भी था। पर कृष्ण तो प्रत्युत्तर दिए बिना ही केवल मंद-मंद मुस्काते ही रहे थे और उसने देखा तो पूतना, यमली अर्जुन, धेनुकासुर, केशी, बकासुर, अघासुर, कालीय नाग ये सब कदंब के नीचे अग्रिम पंक्ति में आकर पहचाने नहीं जा सकें, इस तरह बैठे थे।

यज्ञयाग का आरंभ होने से पूर्व एक वृद्ध यादव ने कहा, 'इस पूजा का पहला विचार कृष्ण को आया था इसलिए यही हमें कुछ अवश्य कहेगा।'

विशाखा के हृदय की ही यह बात थी इसलिए यह तो ठेठ भीतर से प्रकट होने वाली वाणी सुनने के लिए आतुर हो उठी।

गरज रहे बादलों के बीच, कृष्ण ने बांसुरी के स्वर की नाईं अपनी वाणी फैलानी शुरू की : 'मुझे तो बांसुरी बजाने के सिवा आता ही क्या है? मेरा बस चलेगा तो जीवन के अंत तक बांसुरी ही बजाया करूंगा। बहुत दिन पूर्व मुझे विचार आया था कि किसलिए इंद्र की सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। हमने लंका के राजा की निंदा-टीका इसलिए की थी कि उसने सब देवताओं को बंदी बना लिया था और तो भी रात में सूर्य उग सकता था। इंद्र ने मरुत, वरुण, अग्नि को अपने अंकुश के नीचे कर रखे हैं, प्रकृति के सारे ही तत्त्वों को इस अपनी मुट्ठी में रख रखा है यह कैसे सहन किया जा सकता है। इंद्र की कृपा से तो हमें कुछ प्राप्ति होती नहीं। हमें जो प्राप्ति होती है वह इस धरती में से ही होती है। सूर्य प्रकाश बिखेरता है, यही तेज जल को मेघ में रूपांतरित करता है, यह मेघ हम पर जल बरसाता है। इसलिए पूजा तो प्रकृति की हो, इंद्र की नहीं। इस गोवर्धन पर्वत की तलहटी में हमारी गायें चरती हैं, इसकी तलहटी में उगे हुए वृक्ष हमें छाया प्रदान करते हैं, फल देते हैं। देखिए सामने, ऊपर देखिए, आकाश में रंग बदल रहे हैं, शायद आज ही इंद्र कोप करेगा, असमय बरसात का तांडव शुरू करेगा, हमें भयभीत करेगा, लोभ-लालच देगा, परंतु हम इस सबके समक्ष अडिग खड़े रहेंगे।'

यकायक बिजलियां कौंधने लगीं, निर्बल-दुर्बल हृदयों को बिदारती मेघगर्जना सुनाई पड़ने लगी। कृष्ण को अपना भय सच्चा होता लगा। काले-काले बादलों में जल तेज झलकने लगा। सूर्य बमुश्किल एक-दो बिलांत ऊपर चढ़ा था वहीं वह छिप गया। काली रात के धागे में सब कुछ पिरोया जाने लगा। चारों दिशाएं अंधेरे में खो गईं।

तभी यकायक बिजलियां कौंधने लगीं, निर्बल-दुर्बल हृदयों को बिदारती मेघगर्जना सुनाई पड़ने लगी। कृष्ण को अपना भय सच्चा होता लगा। काले-काले बादलों में जल तेज झलकने लगा। सूर्य बमुश्किल एक-दो बिलांत ऊपर चढ़ा था वहीं वह छिप गया। काली रात के धागे में सब कुछ पिरोया जाने लगा। चारों दिशाएं अंधेरे में खो गईं। सूर्यग्रहण के समय जिस तरह सर्वत्र अंधकार फैल जाता है, उस तरह से इस समय भी अंधकार छा गया। बालक रोने लगे। पक्षी चीत्कार कर करके नीचे गिरने लगे। एकाएक आ पड़ी इन विपत्तियों का प्रतिकार करने की सूझ किसी में भी न थी। इतना ही अच्छा था कि खेतों में फसल लहलहाती न थी, फसल के अनाज के ढेर न थे। जो कुछ भी पका हुआ था वह

सब कुछ कभी का घरों में पहुंच चुका था।

कृष्ण सभी को इन विराट कदंब वृक्षों के नीचे ले गए वहां सभी सुरक्षित बैठ गए। कृष्ण ने युवा यादवों की सहायता से जल-पान की, खानी-पीने की व्यवस्था की थी। विशाखा को कृष्ण की दूरदेशी के लिए मान उपजा। विशाखा और कुछ युवा कृष्ण को घेर कर बैठ गए।

बात-बात में जानने को मिला कि कुछेक बुजुर्गों को कृष्ण के प्रति विरोध था, वे इंद्रपूजा चालू रखने के लिए आखिर तक तैयार थे। उन्होंने कुछ गायें छिपा देने की योजना बनाई थी। किसी ने यह भी कहा कि पांचेक बुजुर्गों को इंद्र ने आज्ञा की थी। ये बुजुर्ग कई सारे नीति-नियम बनाने, आचार संहिताएं खड़ी करने के लिए तत्पर थे। जो इनका विरोध करे उन सबको वृंदावन में से देश निकाला देने की बात सोची गई थी।

इस समय इसी बात की चर्चा हो रही थी। कृष्ण ने आश्वासन देते हुए कहा, एक राय होकर पांच लोग हजार के लिए नियम नहीं बना सकते।'

एक भीरू युवा बोल पड़ा, 'पर इन पांच के पास में जो सत्ता है वह हम पांच हजार के पास नहीं।'

'प्रश्न यह नहीं कि सत्ता किसके पास है, नियम गलत हों तो उनका विरोध करना चाहिए जो नियम हों वे सबके लिए हों, वरुण के नियमों का उल्लंघन इंद्र किस तरह कर सकता है? यह ऋतु वर्षा की नहीं, ग्रीष्म में वर्षा होती है, तो किसी ने तो नियमों का उल्लंघन किया ही है यह मान लेना चाहिए। इंद्र को कोई अधिकार नहीं कि हमको भयभीत करने के लिए वैशाख में बरसात भेजे।'

'कृष्ण, इंद्र को, वृंदावनवासियों को दंड देगा ही। बुजुर्ग हमें देश निकाला देंगे। तू यह मानता है कि सभी तुम्हारा साथ देंगे? सारे ही कोई तुम्हारे पीछे-पीछे आने वाले नहीं।'

बोलने वाले को बीच में ही बोलने से रोककर विशाखा बोल उठी, 'मैं पीछे नहीं आने वाली, मैं ही पहले निकल जाऊंगी। कृष्णविहीन वृंदावन को क्या वृंदावन कहा जा सकता है? यह आगे और मैं इसके साथ में, जिनको आना हो वह आए साथ में।

'विशाखा, तू पागल न बन, कितने सारे यादव इंद्रपूजा चालू रखने का वचन देकर बैठे हैं, इंद्र ने उनको धन-धान्य से समृद्ध करने का वचन दिया है। जो पूजा नहीं करेंगे उनके अस्तित्व मिट जाएंगे। ऐसी धमकी दी है।'

'मित्रो, मैं आपको वचन देता हूं। देखिए सिरजनहार ने बहुत कुछ सिरजा, इसी तरह पीपल को भी सिरजा। अब यह सिरजनहार यों कैसे कह सकता है कि मैं धरती पर से पीपल का अस्तित्व ही मिटा डालूंगा। पीपल तो क्या तिनके तक को जीने का अधिकार है। मात्र बाहुबल से जगत खड़ा नहीं किया जा सकता और खड़े हुए जगत को नष्ट नहीं किया जा सकता।'

एक कोने से आवाज आई, 'कृष्ण, इंद्र ने ऐसा लालच दिया है कि हम तुम्हें स्वर्ग के रहस्य देंगे।'

'अच्छा! पर स्वर्ग के रहस्य पाकर करेंगे क्या? जब तक इसदिव्य रत्नावसुंधरा के रहस्य न जान सकें तब तक अंतरिक्ष पाकर क्या करेंगे?'

'नहीं... नहीं... तो भी इंद्र की बात बिलकुल भूलने जैसे नहीं... वे तो हमको देव समान बनाने के लिए तैयार हैं, एक-एक बालक निरोगी, सुंदर...'

विशाखा बोले बिना रह न सकी। वह कृष्ण के पास आकर खड़ी रह गई। 'नहीं बनना हमें देव समान। हमें तो मानव ही रहना है। जो तुच्छ है इसको नहीं महान बनाना और जो महान है उसको छोटा बनाना नहीं। तिनके के बदले वटवृक्ष नहीं चाहिए। और... और देवता तो अपूर्ण हैं।'

'किस तरह?'

'कभी देवों ने नहीं पहचाना जन्म और नहीं पहचानी मृत्यु।'

'विशाखा, तू नहीं मानती उतना इंद्र शक्तिशाली है और सत्ता के आगे तो झुकना ही पड़ता है।'

'कौन-सी सत्ता? हृदय स्वीकार करे वह सत्ता या चतुर मन कहे वह सत्ता?'

'कृष्ण, हमें चिंता हो रही है कि इस समय तो ये यादव तुम्हारी बात मान रहे हैं पर सोच कि...'

'आपत्ति काल में मुझे छोड़ दें तो? स्वछंदी बन बैठे तो? चलित हो जाएं तो? ऐसी सभी संभावनाएं स्वीकार कर लेनी चाहिए?'

पांच विराट कदंब वृक्षों के नीचे सभी सुरक्षित थे और उसके आनंद में विशाखा ने रास रचाना शुरू किया। वृंदावन की गोपांगनाएं तो पागल बनकर बांसुरी के नाद में झूमने लगीं। यह गीत-संगीत वर्षा के घोर रव को बींधकर स्वर्ग के द्वार को झकझोरने लगा।

000

इंद्र ने देखा तो वृंदावासियों पर किसी का भी प्रभाव हुआ न था। वे झुकना चाहते न थे। इतनी अधिक बरसात और तो भी कृष्ण तो निरांति से बांसुरी बजाता है। वर्षा की घनघोर ध्वनि को बींधकर इसकी बांसुरी का नाद दसों दिशाओं में फैल रहा है। घुटनों के बल चलने की उम्र में इसने यमलअर्जुन वृक्ष उखाड़ डाले थे ऐसी बात सुनी है। परंतु ये कदंब वृक्ष वायु देवता से भी उखाड़े नहीं जा सके। क्या कृष्ण देवसभा में हमारा गर्व भंग करने आ पहुंचे यक्ष का भक्त होगा? नहीं तो इतने भयानक तांडव में समांतर संगीत की साधना कैसे चल सकती है? विनाश के निकट होने पर भी आनंद मना रहा है और दूसरों को आनंद-प्रमोद करा रहा है। पर कुछ करना पड़ेगा यह सोचकर इंद्र ने अग्नि को आमंत्रित किया।

'अग्निदेव, वरुण देव ने तो हाथ खड़े कर दिए। अब आप युद्ध में जाइए। आप तो जिसको छूते हैं, वह सारा अग्निमय हो

जाता है। सोचा था उसकी अपेक्षा कृष्ण अधिक बलवान निकला। उसने वृंदावासियों के लिए आश्रय स्थान बना दिया है। हम स्वर्ग में जो आनंद कर नहीं सकते थे, वे आनंद कृष्ण धरती पर करा रहा है। जाइए अग्नि, सारी शक्तियां आजमाइए। मैं अरुण को आज्ञा देता हूं कि वह सूर्य का सारथि पद त्याग दे। चाहे वृंदावन पर सूर्य देव आग-आग बरसाएं।'

'क्षमा देवराज! विनतापुत्र अरुण को सूर्य का सारथि पद देने की आज्ञा प्रजापिता ने दी थी। आपका आधिपत्य वहां नहीं चल सकता। आप जो आज्ञा प्रदान कर रहे हैं, उसके क्या परिणाम आएंगे इस पर विचार किया है कभी? वृंदावन के विरुद्ध आपके द्वेष का भोग समस्त पृथ्वीवासियों को किसलिए बना रहे हैं?'

'इसकी चिंता कृष्ण को करनी है। मेरा प्रतिकार करने से पहले उसे विचार करना चाहिए था।'

'महाराज, आपकी आज्ञा भयानक है। यह वृंदावनवासियों को ही नहीं समस्त प्रजा को खा जाएगी। निर्दोष और निर्बल लोगों की हत्या इस तरह नहीं की जाती।'

'क्या? अग्निदेव आप मेरी आज्ञा का अनादर करना चाहते हैं?'

'नहीं... देवराज की आज्ञा शिरोधार्य पर यह देवाज्ञा नहीं। मेरा एक नाम पुरोहित है, सबका हित देखने वाला, सबके आगे रहने वाला। मेरे समक्ष हैं ये वृंदावनवासी, गोकुलवासी, स्त्रियां, बालक। ये सब मेरी अग्नि ज्वालाओं के स्पर्श मात्र से मृत्यु को प्राप्त होंगे। नहीं, देवराज नहीं। ऐसी आज्ञा दानवराज भी नहीं देते। क्षमा करें, महाराज! मेरी विवेकबुद्धि ऐसी आज्ञा मानने से मना करती है।'

'क्या? मेरी... मेरी आज्ञा का उल्लंघन। मैं सोमपान का आपको अधिकार नहीं दूंगा। आप मना करेंगे तो आखिरकार मैं उनपर वज्र प्रहार करूंगा।'

'शुक्रराज, मेरी बात मानिए। आप वृंदावनवासियों को झुका नहीं सके। इसका मर्म समझें।'

'अग्निदेव, यदि आप मेरी आज्ञा का पालन किए बिना ही स्वर्ग सुख, भोग-उपभोग, ऐश्वर्य, समृद्धि, इन मेनका, रंभा, उर्वशी, घृताची के नृत्य-संगीत का उपभोग करना चाहें तो यह नहीं हो सकेगा। या तो मेरी आज्ञा का पालन करें या स्वर्ग में से विदा लें. ..'

देवसभा कांप उठी, इंद्र के वचनों में निहित अहंकार सबको जलाने लगा। अग्निदेव क्या करेंगे? जैसे उनके कानों में वृंदावनवासियों के चीत्कार, आर्त्तनाद, यातनाओं की ध्वनि-प्रतिध्वनियां पड़ीं, अग्निज्वालाओं में फंसे हुए गोपाल, शिशु, गोपकन्याएं ही नहीं, अभी तो बमुश्किल जिनके पांखें फूटी थीं, वे शुकशावक, पयपान करते बछड़ों को लात मारकर दूर धकेल देना चाहती गायों के चीत्कार कानों में पड़े। हरेकच वृक्षों को घेर चुकी अग्नि का स्पर्श पत्तों के भीतर रहे हुए जल को हुआ और चारों ओर धूम्रवलयों में समस्त गोवर्धन पर्वत ढक गया। इंद्र का अटहास चारों ओर गूंजें मारता था। 'रंभा, मेनका आरंभ करो नृत्योत्सव। चित्रसेन, गायन-वादन शुरू कीजिए...'

वरुण, मरुत्गण, अश्विनी कुमार स्तब्ध थे। चारों दिशाओं में इंद्र का वज्र घूमता हो और यत्र-तत्र-सर्वत्र अपनी सत्ता फैला रहा हो ऐसा लगा। अग्नि के सामने सबकी दृष्टि लगी थी। अग्नि को विचार हो आया कि एक समय यहां के यक्ष के स्थान पर हेमवती उमा प्रकट हुई थीं, इसी ही तरह इस समय भी प्रकट हों तो कितना अच्छा? इंद्र की क्रोधाग्नि का सामना उमा के स्निग्ध मधुर नेत्र ही कर सकते हैं। मन-ही-मन वे उनका स्तवन करने लगे।

'अग्निदेव, मेरी आज्ञा समझ में आई या नहीं?' इंद्र की गर्वोक्ति सुनी और अग्नि की स्वगत लीला थम गई।

'जैसी आज्ञा देवराज, मैं स्वर्ग में से विदाई पसंद करता हूं। ये समस्त सुख-भोग, संगीत-नृत्य, आप ही भोगें...' इंद्र सिंहासन पर से उठने को हुए पर वहीं-के-वहीं पर ही स्थित रहे।

'मैं वृंदावन जाता हूं, वहां अनेक रूपों में उपस्थित रहूंगा।' यों कहकर अग्नि ने धीरे-धीरे चलते हुए विदा ली। वायु को लगा था इंद्र अग्नि को रुक जाने की विनती करेंगे, परंतु इंद्र ने तो राजहठ पकड़ा था और राजधर्म त्याग दिया था।

अग्निहीन इंद्र को तेज कुछ क्षीण होने का आभास हुआ। इंद्र ने चारों तरफ दृष्टिपात किया। अग्नि की अनुपस्थिति से स्वर्ग की महत्ता घटेगी ऐसा वे मान नहीं सके।

इंद्र कुछ बोले उससे पहले वरुण आसन पर से उठ खड़े हुए, 'क्षमा शक्रराज, आप सहस्राक्ष हैं और तो भी दृष्टिहीन हैं, अग्नि बिना जल को मैं किस बरसाऊंगा। वृंदावनवासियों को जल से पराजित करने गए तब तक तो ठीक, परंतु अग्नि को आप ऐसी आज्ञा दें यह कैसे चले, इन्होंने आपकी आज्ञा का अनादर करके नीतिभंग की पर इन्होंने स्व-रूप सहेजे रखा। जहां अग्नि वहां मैं, मैं इनका अनुचर हूं।' कहकर पर्जन्यदेव भी अग्नि के पीछे-पीछे चल निकले।

और इस तरह सारे देव-देवियों ने स्वर्ग का ऐश्वर्य, स्वर्ग की समृद्धि को स्वर्ग में ही रहने देकर विदा ली।

इंद्र स्तब्ध! अपने समक्ष घटी घटना की जैसे उनको प्रतीति होती न थी।

स्वर्ग सूना हो गया। इसकी शून्यता को दूर करने के लिए इंद्र ने उर्वशी को बुलाया। वह प्रकंपित चाल से आई पर अंत में कुछ दूर खड़ी रह गई।

'उर्वशी, दूर क्यों? निकट आओ।'

पर उर्वशी निकट नहीं सरकी।

'क्यों उर्वशी, कोई दुविधा है?'

'अधिपति, क्षमा। स्वर्ग में कभी भी दुर्गंध होती नहीं.. पर

आज आपकी काया में से दुर्गंध बही आ रही है.. यह दुर्गंध मुझ से सही नहीं जाएगी, हममें से किसी को भी सहन नहीं। हम भी गंधवती वसुंधरा पर कृष्ण के पास जाएंगी, कृष्ण की बांसुरी के स्वर पर नृत्य करेंगी।'

इंद्र कुछ बोलें, कि इससे पहले सारी अप्सराएं वृंदावन की दिशा में जाने लगीं।

स्वर्ग की सीमाएं मानों अनेक गुनी हो गईं। देवराज इंद्र इस विराट स्वर्ग में इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। नहीं संगीत, नहीं नृत्य, नहीं सोमपान... पर उन्होंने हृदयदौर्बल्य को मार हटाया : मेरे साथ में भले ही कोई न हो, भले मेरे साथ मातरिश्वा न हो या वरुण न हो, भले योजक-अग्नि मेरे साथ न हो, इस हाथ में वज्र तो है ही। अब इसे लेकर गोवर्धन पर आक्रमण के सिवाय और कोई विकल्प नहीं।

इंद्र के व्यक्तित्व का एक अंश अग्नि की बात स्वीकार कर लेने का कहता था पर इस अंश को वे गाड देना चाहते थे। अग्निदेव की सच्ची, कड़वी बातों में तथ्य तो था परंतु वे आज ममता के वशीभूत थे। 'मैं अकेला ही युद्ध करूंगा।' उन्होंने देखा तो कदंब के वृक्षों का छत्र कृष्ण और वृंदावनवासियों को अनुकुल आ गया था, बारह मेघ के आक्रमण के बावजूद किसी को आंच आई न थी। इसलिए अब वज्र हाथ में लेकर आकाश में घूमने लगे, वृंदावन के आकाश में मंडराए हुए कृष्ण-मेघ पर वज्र के प्रहार करने लगे। अधिक गुदगुदे पानी वाले बादलों को तितर-बितर कर डालने में इंद्र को देर नहीं लगी परिणामतः जैसे आकाश ही फट पड़ा।

वृंदावन की धरती दिखती न थी। चारों दिशाओं से पानी बरसने लगा। कदंब वृक्ष इस पानी को रोक सकें ऐसे न थे, कृष्ण की बांसुरी के स्वर थम गए, विशाखा और सखियों के रास थम गए, बालक-किशोर भयभीत हो गए। इंद्र के कोप से कृष्ण किस तरह रक्षा करेंगे, इसकी चिंता सबको होने लगी।

कृष्ण ने बांसुरी कटिबंध में खोंसी। विशाखा भयभीत। वर्षा की झड़ी की ठंड से कांपते शिशुओं को आश्वस्त करती-करती वह सब जगह घूम रही थी।

कई सारे यादवों को निमित्त मिल गया, वे नंदबाबा को कहने, लगे, 'हम तो कहते ही थे कि कृष्ण को अंकुश में रखो, यह उच्छृंखला हो गया है। त्रिभुवनस्वामी की पूजा नहीं करने का कोई कारण न था। आपने इसको रोका नहीं इसका यह परिणाम!'

नंदबाबा के चेहरे पर ग्लानि और क्लांति थी। 'पर देवर्षि नारद की बात सुनकर हम सबने गोवर्धन पूजा की क्या सम्मत्ति नहीं दी थी?'

'नारद! है यहां इस समय? देखिए, हमारी दशा कैसी हो गई है? घरबार छोड़कर इन पेड़ों के नीचे बेसहारा आकर यहां खड़े हैं। कंस की मथुरा भी इसकी अपेक्षा तो ठीक थी।'

'मित्र, कंस का स्मरण इस समय क्यों करते हो? यह नर-राक्षस! उग्रसेन को कारावास में डाला, बहन-बहनोई को कारावास में डाला, ताजा जन्मे हुए भानजों की निर्दयतापूर्वक हत्या की... पूरी मथुरा इसके पापों से भरी-भरी है।'

'यहां भी क्या है इस समय? मैंने तो कृष्ण से कहा भी था कि तू ही यादवों का सर्वनाश लाएगा... लो... सर्वनाश आ पहुंचा... चारों दिशाओं में पानी-ही-पानी... और बरसात तो रुकने का नाम ही लेती नहीं...'

'धीरजे रखो...'

'काहे का धीरज? यह पानी उतरे इतनी देर, इंद्रपूजा का संकल्प आपके द्वारा कराएंगे। और आपके कृष्ण को भेज देंगे मामा कंस के पास में, वहां चाहे यह अपना बुद्धिचातुर्य और वीरता दिखाए।'

कृष्ण कदंब वृक्षों में से बाहर आए। चारों ओर पानी-ही-पानी था। क्षितिज के इस छोर से उस छोर तक एक सरीखी मेघमालाएं थीं। अतीव गहरा भूरा रंग और इसमें बीच-बीच में हृदयविदारक विद्युल्लताएं...।

अनराधार मेघ के बरसने के अनुभव कोई कम न थे। परंतु इस समय हो रहा अनुभव असाधारण था। जैसे सृष्टि के सिरजनकाल का जल बरस रहा था। बरसात के साथ विनाशकारी तूफान भी बहता आता था। काले भंवर बादल निचुड़-निचुड़ कर धरती पर बरस रहे थे। यह जल और यह स्थल है, यह आकाश है और यह धरती है यह भेद मिट गए थे।

इंद्र तो बहुत कुपित थे। सांप के मुंह में मेंढक जीवित रह सकता है, भूखे विकराल बाघ के हमले से बछड़ा उबर सकता है, बाज के पंजे में फंसा हुआ कबूतर बच सकता है पर मेरे क्रोध से वृंदावनवासी बचने वाले नहीं यह मान कर इंद्र अधिक-और-अधिक वेग से वज्र घुमाने लगे। इसकी फुत्कार बरसात की झड़ियों में घुल जाती थी।

कृष्ण पानी घंघोलते-घंघोलते गोवर्धन के पास में जा खड़े रहे। तलहटी से शिखर तक के गोवर्धन को आंखों की पुतलियों में समा लिया।

'हे महागोवर्धन, गोकुलवासियों के जीवनदाता, जीवनधात्रा... आज इंद्र कोपायमान हुआ है, अब तक हमने इसकी पूजा चालू रखी। अब यह पूजा बंद करने का निर्णय गोकुलवासियों ने किया, इसलिए इसने हमें दंड की ठानी है। गोकुलवासियों का ये विनाश चाहता है, मेरी बात छोड़ो... दूसरे तो इनके भक्त थे न? इनको भी कहां अभयवचन दिया है? इनको क्यों अपना कल्याणकारी वरदहस्त नहीं बताया? इसने तो अपने भक्तों का विनाश करने की भी सोची है।

'मैं इस समय हमारे समग्र परिवार की रक्षा के लिए आपके पास आया हूं। इनको बचाने का एकमात्र मार्ग आपकी छत्रछाया

के नीचे रहने का है। मैं आपको लीलामात्र में ऊंचा उठा लूं। प्रभु, चाहे इसको मेरा अभिमान समझें। रावण की तरह मैं शक्ति प्रदर्शित करने आया नहीं। जगतभर के मनुष्यों और पृथ्वी के, जीवसृष्टि के प्रतिनिधि के रूप में मैं नम्र भाव से विनती करने आया हूं।'

'आपने इस पर्वत पर सबको आश्रय दिया है। वृक्षों, वृक्षों पर अनेक रंगी-अनेक गंधी पुष्पों, लताओं, इन वृक्षों पर बसने वाले पक्षियों, इनके घोंसलों में पांखें नहीं फूआी हों, ऐसा बच्चों, वृक्ष के तने पर चढ़-उतर करती कीटसृष्टि, वृक्षों के तने के पास में नाग के बिल, धरती पर जहां पैर रखो, वहीं बीजांकुरित हुई नव वनस्पतियों, जीवों... महामना, मुझे यह भय है कि मैं सबको उठाऊंगा तो इस जीवसृष्टि को आंच आएगी। हे पर्वतराज, पंख जैसे हल्के हो जाएं तो इन जीवों को आंच न आए, मैं उठा लूं बाद में फिर गरिमायुक्त होइए। हमारे मनुष्यों की विनती को मान-सम्मान दीजिए...।'

कृष्ण प्रार्थना करके चुप हो गए।

'लो... यह कृष्ण तो यहां है।' पांच-सात बुजुर्ग यादव थे और इनके पीछे दस-पंद्रह युवाओं की टोली थी। कृष्ण को उनकी आंखों से लगा कि वे झगड़ा करना चाहते थे। एक मजाकिया बीच में बोला, 'कृष्ण, गोवर्धन प्रसन्न हुए क्या?'

पीछे से विशाखा आ पहुंची और कृष्ण के एक ओर खड़ी हो गई।

'तू क्या करना चाहता है? कुपित हुए इंद्र को मनाने का अब एक ही रास्ता है और वह है इंद्र महोत्सव मनाने का। हम इनसे क्षमा मांगे।'

'किसलिए? हमने कोई अपराध किया नहीं। अपराध तो इसी ने किया हैं क्षमा इसे मांगनी चाहिए।'

'क्या? इंद्र हम से क्षमा मांगे?' तीन भुवन के स्वामी हमारे समक्ष झुकें?'

'जो भूल करे वह क्षमा मांगे।'

'क्षमा की बात जाने दें। हम इंद्रोत्सव करते हैं।'

'नहीं।'

'तो फिर क्या करना है तुझे?'

'आप मुझे सहयोग दें, इंद्र का मिथ्याभिमान टूटना ही चाहिए। आज यह वृंदावनवासियों को हैरान करता है, अगले दिन दूसरों को पीड़ित करेगा। सत्ता हो इसलिए अन्यों को कुचल डाला जाए? शंकर भगवान के तीसरी आंख है पर वे इसका उपयोग कभी-कभी ही करते हैं... इंद्र को मैं थका डालना चाहता हूं। इसलिए मैं इस समय गोवर्धन पर्वत उठा लेता हूं। इसकी छत्रछाया में हम सारे ही सुरक्षित रहेंगे। फिर इंद्र को जितना बरसना हो, बरसे।'

यादव कृष्ण की बात का विश्वास नहीं कर सके, 'क्या तू गोवर्धन उठाएगा?'

'अरे, तुम देखो तो सही कि यह कैसे उठाता है? यदि तू यह नहीं उठा सका तो हम इंद्र महोत्सव मनाएंगे न?'

'हां!'

यह सुनकर यादव जोश में आ गए। 'चलो, चलो, हम इंद्र महोत्सव की तैयारी करने में जुट जाएं। यह पर्वत कोई इससे उठने वाला नहीं।'

विशाखा के हृदय में धकपक होने लगी। कृष्ण को इस तरह इंद्र महोत्सव की हामी भरने की जरूरत नहीं थी।

हवा में बात फैली कि कृष्ण इतना बड़ा गोवर्धन पर्वत उठाएगा। सब लोग समूह में एकत्रित होने लगे। अगली दिन गोवर्धन पर्वत के मध्यभाग तक खोद निकाली हुई सुरंग में कृष्ण ने प्रवेश किया और कुछ देर में ये बीच के भाग में जा पहुंचे।

विशाखा ने गोवर्धन पर्वत की मन-ही-मन वंदना की।

'देखिए, यह है गोवर्धन पर्वत का निचला भाग। मैं यहां से गोवर्धन को उठाता हूं।'

और सबके देखते-देखते कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को लीलामात्र को उठाता हूं।'

और सबके देखते-देखते कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को लीलामात्र में ऊंचा उठा लिया। इसको उठाते समय कृष्ण की काया भी ऊंची हुई। कृष्ण ने वृंदावनवासियों को गोवर्धन पर्वत के नीचे बुलवा लिया। सभी आश्चर्यचकित हो गए, विरोधी यादव यह घटना मान ही सकते नहीं थे। गोवर्धन ने कृष्ण की विनती को स्वीकार किया था इसलिए हल्कापन अनुभव हो रहा था। गोपबालों से कृष्ण ने लट्ठों के सहारे-आधार लगवाए। आनंदोत्सव आरंभ हुआ। बांसुरी बजी, रास रचा गया। उर्वशी, रंभा, मेनका और दूसरी अप्सराओं के नृत्य आरंभ हुए। इस धन्य क्षण में पृथ्वीवासियों के सम्मुख अपने दैवी नृत्य नैवेद्य के रूप में प्रस्तुत किए।

देखते-देखते कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को लीलामात्र में ऊंचा उठा लिया। इसको उठाते समय कृष्ण की काया भी ऊंची हुई। कृष्ण ने वृंदावनवासियों को गोवर्धन पर्वत के नीचे बुलवा लिया। सभी आश्चर्यचकित हो गए, विरोधी यादव यह घटना मान ही सकते नहीं थे। गोवर्धन ने कृष्ण की विनती को स्वीकार किया था इसलिए हल्कापन अनुभव हो रहा था।

गोवर्धन पर्वत के आसपास के सभी क्षेत्रों के लोगों को प्रलयकाल का अनुभव हो रहा था। इन्होंने किसी-किसी समय में बड़ी होती मछली की और मनु की कथा सुनी थी। कहां गई वह मछली और कहां है मनु? यहां तो सब जगह हिरण्याक्ष ही आंखों के समक्ष थे। नदियों में, झरनों में मरे हुए पशु, बड़े-बड़े उखड़े हुए वृक्षों के तने। ये तने ईंधन के लिए खींच लाना चाहते तरुणों की

भीड़ भी तट पर जमी थी। प्रारंभ में तो ऐसे पुरुषार्थों के लिए उत्साह था, पर अब सभी थक गए थे। तभी कहीं से बात सुनने के लिए मिली कि बचना हो तो गोवर्धन पर्वत के निकट पहुंच जाइए इसलिए कई गाड़ों में बैठकर, पैदल चलकर, कई-कई रथ में बैठ कर चल पड़े। रास्ते में फंस जाने वाले भी कम न थे। एक-दूसरे की सहायता करते ये सब धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। इस तरह भूखे, थके-हारे लोग जब गोवर्धन पर्वत के पास में पहुंचे तब इस दृश्य को देखकर ही इनकी भूख-प्यास, थकान दूर हो गई। गोवर्धन पर्वत के नीचे जो जाता उसका समावेश हो जाता था।

सात दिन तक वर्षा सतत बरसती रही। रास-नृत्य-गीत खेले-गाए जाते रहे। आखिरकार इंद्र थके। प्रारंभ में तो कुछ समझ नहीं आया। परंतु आकाशी मेघों का तांडव घटा। पहले तो तुमुल नाद सुनाई देता था और अब वह थमने लगा था। बिजलियां भी कौंधनी कम हो गई थीं। कृष्ण की दृष्टि बांसुरी बजाते-बजाते आकाश से धरती और धरती से आकाश पर घूम जाती थी। इन्होंने भी इस परिवर्तन को भांप लिया। विशाखा ने कृष्ण की दृष्टि परख ली थी।

आहिस्ता-आहिस्ता मेघमाला बिखरने लगी। वर्षा रुकी। सूर्यप्रकाश धीरे-धीरे गोवर्धन पर्वत को, वृंदावन को, वृंदावनवासियों को आलोकित करने लगा। कृष्ण ने गोवर्धन को सावधानी से धरती पर रखा और स्वयं बाहर आए।

कृष्ण के इस अप्रतिम कृत्य के साक्षी बने सारे ही लोग आनंदविभोर हो गए। इनके मन में सूर्य, गोवर्धन और कृष्ण एकाकार होने लगे।

तभी देवता भी प्रकट हुए। इन देवताओं के साथ में एक वृद्ध भिक्षुक भी था। वह कृष्ण के पास में आया।

'हे महामना कृष्ण... क्षमा...'

कृष्ण ने भिक्षुक को आलिंगन दिया, 'स्वर्ग को क्षमा देने वाला मैं कौन? परंतु अब आप यही रूप धारण कर रखना।'

चारों दिशाओं में सर्वत्र भरा हुआ पानी घटता गया, धरती सुवासित हो गई। विशाखा ने पुनः रास आरंभ किया। उर्वशी, रंभा, मेनका, घृताचि ने साथ दिया। कृष्ण की बांसुरी के स्वर बहने लगे। तभी वीणा का मधुर नाद सुनाई दिया। बांसुरी और वीणा के साथ सभी ने गोवर्धन स्तुति की। अग्निवरुणादि देवों की उपस्थिति से वातावरण तेजोमय हो गया। (समाप्त)

2-ए-2, पवनपुरी, बीकानेर, राजस्थान-334 003,
मो. 94608 93974

मूल लेखक का पता :
233, राजलक्ष्मी सोसायटी, जूना पादरा रोड,
जिला वडोदरा, गुजरात-390007
मो. : 98248 12581

लघु कथा

सोच

● **शबनम शर्मा**

रोहन मेरे पड़ोस में रहता है। मैं भी इस स्थान पर कुछ दिनों पहले ही आई हूँ। वह छोटा सा बालक मात्र दस-ग्यारह बरस का है। अकसर मुझे देखते ही मुस्कुरा देता। मुझे भी उसे देखकर अच्छा लगता। एक दिन साथ की पड़ोसन ने बताया कि ये बालक मात्र पांच बरस का था जब इसकी माँ चल बसी। अब यह सौतेली माँ के पास है, उसके भी दो बच्चे और हैं। माँ-बाप दोनों इससे अच्छा व्यवहार नहीं करते। फिर भी यह हमेशा मुस्कुराता इनका सारा काम करता रहता है।

एक दिन जोरों की बारिश हो रही थी। मैं गलियारे में बैठी बारिश का मजा ले रही थी कि रोहन भी हमारे घर आ कर मेरे पीछे खड़ा हो गया। पानी से भीगा वह और भी सिकुड़ा सा लग रहा था। मुझे चाय पीने का बहाना मिल गया। मैं उसे अन्दर ले गई। तौलिये से उसका सिर पोंछा, उसे कुर्सी पर बिठाया और चाय बनाने लगी। इसी बीच मैंने पढ़ाई के बारे में उससे कुछ बातें पूछनी शुरू की।

गजब के जवाब थे उसके। मेरा मन प्रसन्न हो गया। मैंने उसे शाबाशी दी और चाय बिस्कुट खाने का आग्रह किया। जैसे ही उसने चाय का कप उठाया, उसकी बाजू पर नीला गहरा निशान मुझे पसीज गया। ''ये क्या हुआ?''

वो चुप शान्त बैठा रहा।

मैंने फिर पूछा, उसने जवाब दिया, ''कल रात माँ की मदद कर रहा था, ठीक से काम न कर पाया, दो रोटी मुझसे जल गई। माँ ने चिमटा मार दिया। बस ये जरा सी लग गई।''

मेरे मुँह से चीख निकल गई, ''जरा सी, ये जरा सी है। तेरे पापा ने कुछ नहीं कहा?''

''वो क्या कहते, वो तो मुझे ही डाँटते। पर आँटी, एक बात बताऊँ, ये कोई बड़ी बात नहीं है। अगर आज मेरी माँ जिन्दा होती तो मैं बिगड़ जाता। ये दोनों सख्त हैं तो मैं अपनी कक्षा में प्रथम आता हूँ और कभी एक बड़ा अफसर बन ही जाऊँगा। फिर देखना...'' कहकर वो तेजी से भाग गया।

मैं उसकी बड़ी अनोखी सोच पर हाथ मलती रह गई।

अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा,
तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि. प्र. - 173021
मो. 09816838909

कहानी

खबर हो गया एक आदमी

● सैली बलजीत

मेरे बारे में तो बस सभी इतना ही जानते हैं कि भिखमंगा होगा कोई। मेरी शक्ल से तो हर कोई भिखमंगा ही समझेगा मुझे... मेरा हुलिया देखा था ना? मेरे बारे में तुम्हारी भी तो यही राय बनी होगी, लेकिन... मुझे हाथ पसारे हुए भीख मांगते हुए तुमने देखा था 'टरेन' में। 'टरेन' में ही तो देखा था तुमने मुझे... जब मैं ठिठुरते हुए 'टरेन' के इस डिब्बे में घुसा था तो एक बार तो तुम मेरी ओर टकटकी बांधे हुए देखने लगे थे, जैसे मैं किसी चिड़ियाघर से भागा हुआ कोई जंगली जानवर होऊं। पर उससे तुम लोग ज्यादा विचलित नहीं हुए थे। मैं चुपचाप डिब्बे के दरवाजे के पास ही बैठ गया था... जाड़े से बर्फ हुए से फर्श पर... संडास के पास... जबकि मेरे पास से गुजरने वाले हर शख्स को मुंह-नाक पर रूमाल रखे हुए ही देखा था मैंने। बदबू मुझे भी तो आ रही थी संडास से जिसका दरवाजा खराब होने की वजह से बंद नहीं हो रहा था... हालांकि बदबू मुझे भी आ रही थी... लेकिन संडास की बदबू से ज्यादा बदबू शायद मेरे कपड़ों से आ रही थी, ऐसा मैं जानता हूं। तुमने भी तो देखा होगा कि मेरे मैले-कुचैले चीकट हुए कपड़ों पर किस तरह काली तहें जमी हुई थीं मैल की... रात हो गई थी, इसके साथ ही जाड़ा भी बढ़ गया था, मुझे किसी ने दरवाजा बंद करने का हुक्म दिया... एक तगड़ा-सा मूंछों वाला आदमी था वह, बंद कर ओए बुड्ढे दरवाजा... बाप की गाड़ी समझ रखी है... कर बंद इसे... ठंड से मरना है तो मर... हमें क्यों मारने लगा है..."

"थूकने को खोला था..." मैंने इतना ही कहा था।

"अब खोला तो एक रखूंगा तेरी गर्दन पर... चले आते हैं बाप की गाड़ी समझकर..." कोई जना कड़ियल आवाज में बोला था।

"नहीं खोलूंगा जी..."

"अब आदमियों की तरह वहीं बैठा रह अगर थूका तो उठाकर बाहर पटकूंगा...समझा..."

"समझ गया जी..."

"क्या समझ गया?"

"जो कहा है आपने..."

वे चार-पांच जने थे। वे लोग फिर ताश खेलने लगे थे, बीच-बीच में रुक-रुक कर बतियाने के अलावा वे बीड़ियों के सुट्टे भी मारते थे। इस बीच गर्मागर्म चाय लिए हुए एक छोकरा आ गया था। गाड़ी किसी टेसन पर खड़ी थी।

डिब्बे में सभी जने गर्म चाय की चुस्कियां लेते हुए, जाड़े से ठंडे हुए हाथों को कांच के गिलासों पर रखे हुए, गर्माहट लेने लगे थे... मैं नहीं बैठा रहा था... ठंडे फर्श ने मेरी पिंडलियां... मेरी कमर... सब कुछ बर्फ की तरह ठंडी-शीत कर दिया था... मैं हाथों को कब तक आपस में रगड़ता, मेरी ललचाई आंखों में शायद 'टरेन' में बैठी एक छोटी-सी बच्ची ने देखा था... जो शायद जान गई थी कि मुझे इस वक्त चाय की तलब की नहीं.. चाय की जरूरत थी... मेरे कानों में एक तोतली-सी आवाज घुसी थी...

"मम्मी... एक कप चाय उसे भी पिला देते हैं..."

"किसे?" उस लड़की की मां ने डपटा था उसे शायद।

"उस आदमी को... जो कई घंटों से ठंडे फर्श पर बैठा है... मम्मी बिचारा ठंड से कांप रहा है देखो तो..." उस बच्ची ने मेरी तरफ इशारा किया था। चुप नहीं बैठ सकती... वह औरत फिर कड़की थी।

"मम्मी उसे पिला दो ना चाय..."

"नहीं बेटी... ऐसे आदमी गंदे होते हैं... इन्हें मुंह नहीं लगाते... तुम चाय पिओ और ऊपर बर्थ पर सो जाओ कंबल लेकर।"

मेरे भीतर चाय की तलब उस वक्त मेरे लिए जरूरत हो गई थी... मैं भिखारी होता तो मांग कर चाय पी सकता था... लेकिन नहीं... मैं लहू के घूंट पीकर रह गया था। फिलहाल मेरे अंदर रात गुजारने के लिए कई तरकीबें फन फैलाए हुए उठ खड़ी हुई थीं। डिब्बे का दरवाजा बंद हो जाने से ठंड तो बराबर उसी तरह रही थी... रात ज्यों-ज्यों पसरती गई थी, ठंड मेरे जोड़ों के भीतर रेंगने लगी थी। मैं चाय के बिना रह पाया था। दिल पर पत्थर रख लिया था। जेब में क्या होना था मेरे... सवेरे से एक रुपया बचाकर रखा था, जेब में वैसे ही पड़ा था, टटोलकर देख लिया था। अगर आधा कप चाय देने को कोई चाय वाला छोकरा राजी हो जाता तो मैं एक रुपये में आधा कप चाय ही पी लेता... लेकिन चाय तो आती है,

दो रुपये में एक कप... मैंने सोचा था कि चाय सवेरे पीऊंगा... हाथ पसारने से वह मर तो नहीं जाएगा... अगर हाथ न पसारे तो यह शरीर के भीतर तक उतरने वाली सर्दी उसे मार देगी... उसका जिस्म कमान की तरह मुड़ने लगा था।

'टरेन' में सभी जने अपनी दुनिया में खोए हुए ठठाने लगे थे। बच्चे बिस्कुटों वाले पैकेट फाड़-फाड़ कर इधर-उधर फेंकते रहे थे। लगभग सभी लोगों ने अपने-अपने कंबल निकाल लिए थे। बुजुर्ग औरतें उछल रहे बच्चों को कंबल ओढ़ा कर सुलाने लगी थीं। जहां तक मेरी नजर आती थी डिब्बे में कई जने तो अपने साथ लाए गए रोटी वाले डिब्बों को फरटि से खोलने लगे थे। चपर-चपर करते हुए रोटी खाने लगे थे सभी।

कुछ देर पहले ताश में लीन उस सामने की सीट वाले लोगों ने अब बैक में से दारू की बोतल निकाल ली थी।

"पानी का जुगाड़ है ना?" उसी मोटी मूंछों वाले आदमी ने दूसरे जने से पूछा था।

"पिछले टेसन से भर लिया था... यह देखा..." उस शख्स ने प्लास्टिक से भरी बोतल सामने रख दी थी।

"गिलासियां हैं ना... या करें कोई इंतजाम?"

"क्या इंतजाम करेंगे...?"

"रात भर ठंड से अकड़ना है क्या...?"

"फौजी रम ले आया था मैं... अब गिलासियां निकाल फटाफट..."

"स्टील के दो-एक गिलास हैं... निकालूं?"

"अब फटाफट कर... बारी-बारी लगा लेंगे... तगड़े पैग ही डालते हैं... कौन बार-बार मुंह का स्वाद कसैला करे... पटियाला पैग ही चलेगा आज।" वे सभी बारी-बारी एक ही गिलास से दारू पीते हुए नशिया गए थे।

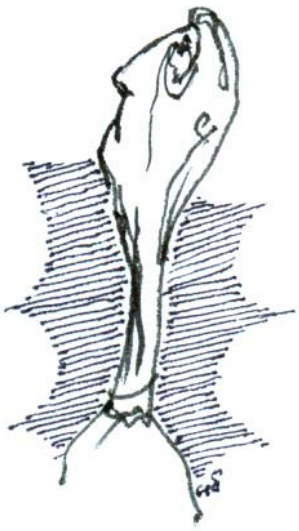

तब वे दुनिया भर की बातों का रस लेने लगे थे। अनाप-शनाप बकने लगे थे। "तू क्या देखता है आंखें फाड़कर? तुम्हें कह रहा हूं बुड्ढे... सुना नहीं?" उसने शायद फिर मुझे निशाना बनाया था।

"बोलो साब अब क्या गलती हो गई..." मैं डर से कांपने लगा था, कहीं अभी उठकर एक थप्पड़ न लगा दे मेरे गाल पर।

"क्या आंखें फाड़कर देख रहा था... दारू पीते हुए लोग कभी देखेने नहीं... बोलता क्यों नहीं...?"

"मैं क्या आंखें फाडूंगा... गरीब ने क्या देखना है और क्या नहीं देखना... साब... क्यों अपना मजा किरकिरा करते हैं... मैं क्या कहता हूं आपको... जब से टरेन चली है.. यहीं बैठा हूं भूखा-प्यासा..."

"तो क्या हम तेरे लिए रोटियों का भी परबंद करें अब... हम पर अहसान कर रहा है.. हम क्या करें अगर तू भूखा बैठा है...?"

"मैंने आपके आगे हाथ तो नहीं पसारे...?"

बीच में काई दूसरा मेरी तरफ देखकर थूकते हुए बोला था, "क्यों मजा खराब करता है, उससे क्यों पंगा ले रहा है... बेचारा पड़ा है... किसी को क्या कहता है... छोड़ यार... ऐसे आदमियों को मुंह नहीं लगाते... काम करो भाई अपना... दारू है बोतल में तो डाल दे..."

वे फिर बारी-बारी दारू की गिलासियां गटागट चढ़ाने लगे थे। इस बीच वे अगले टेसन आने का इंतजार करने लगे थे।

"हो जाए ताश की एक बाजी?" एक जना बोला था।

"नहीं... ओए... अब खाना खाएंगे..." दूसरे ने इनकार कर दिया था शायद।

"अगला टेसन तो आ जाने दे..."

"अगला टेसन... कौन-सा आने वाला है?"

"मेरे खयाल में लुधियाना ही होगा..."

"तो वहां तो गर्मागर्म भटूरे-पूरियां ही खाएंगे... चाय पी-पी कर कलेजा जला रहे हैं कब से..."

"और दारू ने तो और कलेजा जला दिया... आग लगा दी.... फौजी रम ने..."

"पर मजा भी तो आया है ना...सफर का पता ही नहीं चला... वरना ताश खेलते हुए झपकियां आने लगी थीं..."

"पर सो नहीं जाना... अगला टेसन आने वाला है..."

"सोना क्या है... यार डर लगता है..."

"किससे?"

"सामने वाले बुड्ढे से..."

"क्यों...?"

"क्या पता रात को जब सभी सो जाएंगे... कोई चीज-सामान लेकर ही ना चंपत हो जाए...।"

"तो जाग कर काटनी पड़ेगी रात...?"

"गाड़ी में वैसे भी कौन-सी नींद आती है?"

"तो भी खयाल तो रखना ही पड़ेगा ना?"

"तो जागते रहना तू भाई...हम तो खूब सोएंगे... दारू अब चढ़ रही है... ऐसे में तेजी से पेग चढ़ाते गए... अब पता दे रही है अपना... फौजी रम असली लगती है...."

"देखो तो टेसन आने वाला है क्या... गाड़ी की रफ्तार कुछ धीमी हुई लगती है..."

"जब आएगा. पता चल जाएगा... अभी से चिंता क्यों करता

है... भूख क्या हमें नहीं लगी?"

"पर मेरी बात समझ गया ना... उस बुड्ढे पर नजर जरूर रखना..."

वे सभी जने ठहाकों में लीन हो गए। हा... हा... हा...

मैं भिखमंगा ही सही लेकिन मेरे बारे में घटिया सोच जाने क्यों सोच रहे थे, वे लोग। मुझे ऐसे लग रहा था, जैसे मैं एक बहुत बड़ा गुनहगार हो गया हूं, उन सभी की नजरों में... वह कांपने लगा था ठंड से।

अगला टेसन लुधियाना था, मुझे इससे कोई सरोकार नहीं था.. मैंने इससे क्या लेना-देना। मुझे तो बस सफर की इस तोड़ देने वाली पीड़ा से ही दो-चार होना था अभी। मेरे लिए तो सफर का बाकी बचा हिस्सा मौत की तरह फफकारता हुआ दिखने लगा था। क्या करूं जेब में पड़े एक रुपये के सिक्के का... इससे क्या आएगा? एक बीड़ी का बंडल भी अब साढ़े तीन रुपये का आने लगा है... आधा कप चाय तो कोई देने से रहा... फिर आधा बंडल बीड़ियों का कौन देगा... उसने सोचा था अगर आठ-सात बीड़ियां उसकी जेब में होतीं तो इस वक्त ठंड से बचने की झूठी कोशिश तो की जा सकती थी।

मुझे तो बस सफर की इस तोड़ देने वाली पीड़ा से ही दो-चार होना था अभी। मेरे लिए तो सफर का बाकी बचा हिस्सा मौत की तरह फफकारता हुआ दिखने लगा था। क्या करूं जेब में पड़े एक रुपये के सिक्के का... इससे क्या आएगा? एक बीड़ी का बंडल भी अब साढ़े तीन रुपये का आने लगा है... आधा कप चाय तो कोई देने से रहा... फिर आधा बंडल बीड़ियों का कौन देगा... उसने सोचा था अगर आठ-सात बीड़ियां उसकी जेब में होतीं तो इस वक्त ठंड से बचने की झूठी कोशिश तो की जा सकती थी।

तुम सभी डकार मारते हुए, अपनी सीटें पर आ जमे थे, मूंछों को ताव देते हुए। रूई वाली महंगी सिगरेट का अधजला टोटा जमीन पर फेंकते हुए, जूते के तले से मसल दिया था। अगर जलता हुआ टोटा यों का यों फेंक देते तो मैं उसे उठा कर दो-चार सुट्टे तो मार लेता... पर मैंने गिला किया? नहीं ना? मैं कौन होता हूं, गिला करने वाला... मुझे डर लग रहा था कि जाड़े से कहीं निमोनिया न हो जाए मुझे... निमोनिया हो जाएगा तो वह रोक पाएगा... चलो छुटकारा मिलेगा इस नरक वाली जिंदगी से... जी कर भी कौन-सा पहाड़ तोड़ लिया है, बीवी थी, मर गई बेचारी वो भी... अधरंगे हो गया था उसे... बाल बच्चा कोई हुआ ही नहीं... तब से इसी तरह गाड़ियों में बदरंग सफरों की अंधी दौड़ में शामिल रहा है। अंधी दौड़ ही है उनकी जिंदगी के बेनाम और बिना किसी मकसद वाले अंधे सफर की। इस सफर से कब छुटकारा मिलेगा...? वह जानता होता तो इस तरह इस गंदी संडास के पास भला कभी बैठता... चीकट हुए मैल की असंख्य तहों वाले कपड़े भला कभी पहनता? उसे अब तो यह भी याद नहीं कि इन कपड़ों को पहने हुए महीने हो गए हैं या साल... कपड़ों को धोना अब उसके वश से बाहर हो गया है... उसे याद है ये कपड़े बटाला वाली 'पराथना सभा' वालों के कारिंदों ने उसे दिलवाए थे। शायद शहर में किसी सेठ ने सभा वालों को गरीब लोगों को इकट्ठा करने को बोला था... और भिखमंगे लोगों की कतार में वह भी खड़ा हो गया था। एक गर्म स्वेटर, कुर्ता, पायजामा और एक कंबल मुफ्त में मिल रहा था... कौन छोड़ता है... फिर उसे तो इसकी सख्त जरूरत थी, तभी से उसके जिस्म पर वही कपड़े सटे हैं... साल और तारीख उसे याद नहीं... उसने महसूस किया कि ठंड से उसका जिस्म थरथराने लगा था... भूख और ठंड ने उसे तोड़ दिया था, उसने महसूस किया था कि इस वक्त रात के बारह बज गए होंगे। गाड़ी के उस डिब्बे में लगभग लोग सो गए थे... खुर्राटों की आवाज और गूंज रही थी।

"मम्मी देखो वही बुड्ढा... हमारी सीटों के नीचे सो रहा है... ।" उसी बच्ची ने कहा था शायद। उसने सुना था, नींद भला आती है ऐसे भूखे पेट और ऊपर से कड़ाके की सर्दी... उफ...

"तू जाग रही है अभी, मुई..." उसकी मां ने उसे डांट दिया था।

"नींद नहीं आ रही मम्मी..."

"कोई डरावना सपना तो नहीं देख लिया?"

"नहीं मम्मी, बदबू आ रही है..."

"उठा दूं इस बुड्ढे को...?"

"नहीं मम्मी... बेचारा कहां सोएगा?"

"हमें क्या जहां मर्जी मरे... ठेका ले रखा है क्या इसका?"

"मम्मी देखो तो बेचारा है भी या मर गया है... हिलजुल नहीं रहा।"

"तू सो बेटी... तू क्यों चिंता करती है..."

"नहीं मम्मी... उस बेचारे को भूख लगी होगी... बेचारा भूखा ही सो गया... कोई कंबल भी तो नहीं उसके पास..."

"नहीं मम्मी... उस बेचारे को भूख लगी होगी... बेचारा भूखा ही सो गया... कोई कंबल भी तो नहीं उसके पास..."

"तो मैं क्या करूं? अपना कंबल उसे दे दूं?"

"मैं ऐसे तो नहीं कह रही।"

"मम्मी जब हम खाना खा रहे थे तो देखा नहीं बेचारा यह बुड्ढा किस तरह टुकुर-टुकुर हमारी ओर तार रहा था... देखा था ना?"

"नहीं तो बेटी..."

"मम्मी उसे एक रोटी दे देते तो बेचारा आशीशें देता।"

"ऐसे ही नखरे करते हैं, दिखावा करना कोई इनसे सीखे।"

"ऐसा क्यों कहती हो मम्मी... सुन लेगा तो..."

"उसका डर है मुझे?"

"अच्छा नहीं लगता ना..., उस पर तरस आ रहा है..."

कब तक खुसर-फुसर होती रही थी, मां-बेटी के बीच। मैंने सब सुना था, नींद मुझे भला कैसे आती, हड्डियों तक उतरी हुई ठंड में। कंबल मेरे पास होता तो मैं भला आराम से न सोया होता। कंबल तो मेरा पिछले हफ्ते चुरा लिया था किसी ने टेसन पर, नया कंबल कहां से आता। जाने फिर कोई दानी सज्जन 'पराथना सभा' में आए कंबल बांटने...? इसलिए तो मैं बटाला जा रहा हूं। कितनी उम्मीदें बंधी हैं इस सफर पर... सुना है, वहां बूढ़ों को मुफ्त रोटी खिलाते हैं वे लोग, वहां रहने के लिए भी अच्छा जुगाड़ है, लेकिन उनकी शर्त है- सिर्फ घर वालों के कठोर रवैए से टूटे बूढ़े लोगों को ही जगह मिलती है वहां। फिर वह तो ठहरा एकदम फटीचर, न कोई आगे न कोई पीछे। पिछली बार किसी ने शिकायत कर दी थी, तीसरे दिन परबंदकों ने उसे उठा बाहर फेंका था... वह फिर सड़क के फुटपाथ पर आ गया था।

पिछले दो घंटे से करवटें लेते हुए, बेकार सोने की कोशिश में उसकी कमर की जकड़न और बढ़ी है। उसे लगता है कि वह ठंड उसकी जान लेकर ही छोड़ेगी। बाहर किसी टेसन से 'चाय गर्म' का शोर उसके कानों में पड़ा तो उसे अहसास हुआ कि दिन चढ़ने वाला है। वह उठ बैठा था, फर्श से स्वेटर को झाड़ा था। कितनी गर्द चढ़ आई थी कपड़ों पर। उसने मुंह पर हाथ फेरा था, कई हफ्तों से बढ़ आई खूंटेनुमा दाढ़ी के बाल चुभने लगते थे हाथों को। उम्र अभी इतनी नहीं हुई उसकी। लेकिन बुड्ढा कैसे हो गया, उसे लगा था वह तो जन्म से ही बूढ़ा हो गया है। चिंताएं आदमी को बूढ़ा कर देती हैं। उसकी चाय की तलब फिर जाग उठी थी। वह इस बार भीतर तक छटपटाया था।

उसने देखा था, आसपास की सीटों पर पसरे लोग जमुहाई लेते हुए सीटों पर बैठ गए थे। चाय वाला गर्मागर्म चाय की कांच वाली गिलासियां लोगों को थमाते हुए आगे बढ़ गया था। उसकी ललचाई हुई आंखों में फिर चाय की उम्मीदें तैरने लगी थीं। उसके दिल में एक बार तो आया था कि वह अभी जोर से चिल्ला उठे, "गरीब पर तरस खाओ लोगो...एक कप चाय का सवाल है... कोई भगत सज्जन है? भगवान के नाम पर एक कप चाय पिला दो... भगवान भला करेगा... रहम करो गरीब पर... बचा लो मुझे।"

लेकिन उसकी जुबान पर जैसे ताला पड़ गया था, जमीर अभी उसका जिंदा है, जिस दिन जमीर मर गया समझो, वह भी मर गया।

उठते ही उसे पेशाब की तलब हुई थी। वह पेशाब के लिए संडास की तरफ चला गया था। कांपने लगा बेतरह से... ठंड उसके लिए कहर बनके टूट रही थी। वह अंदर चला गया था, टट्टी-पेशाब के लिए... भीतर से कुंडी लगाना भूला नहीं था।

मुझे इतना भर तो सुनाई देता रहा था, बाहर से लोगों ने खूब हल्ला किया था। उसका जिस्म एकाएक अकड़ने लगा था। उसने हाथ हिलाने की चाह में थोड़ा जोर लगाया तो... बेकार... गर्दन में जकड़न... टांगों में जकड़न... सांस धौंकनी की तरह... जुबान बंद... बहुत चाहा कि ऊंची आवाज में पुकारे सहायता के लिए... हाथ कुंडी तक नहीं पहुच पाए... वह छटपटा रहा है। संडास के भीतर गिर पड़ता है... धड़ाम से... पेशाब की एक बूं नहीं निकली... टट्टी पेशाब सब बंद... जिंदगी का खेल खत्म... जुबान लड़खड़ा रही है। कुंडी तक हाथ नहीं पहुंच पाता... असहाय... टूट गया... जिंदगी की डोर टूट गई... पखेरू उड़ गया...

संडास के बाहर आए मुसाफिर कब से खड़े हैं बाहर, दरवाजा खटखटाना जारी है। कुंडी भीतर से बंद है। कोई आवाज नहीं भीतर... लोग हैरान हैं। एक घंटे से प्रक्रिया जारी है।

"कौन है अंदर? स्साला टट्टी गया है या सो गया है? रात के शराबियों वाली मंडली में से कोई बोला था...

"कब से खटखटा रहे हैं... दरवाजा खोलता ही नहीं..." कोई दूसरा तैश में आ जाता है।

"मैं तो कहता हूं... तोड़ देते हैं दरवाजा..."

"इतना मजबूत दरवाजा टूट सकेगा...?"

"कोशिश करके देखते हैं..."

"आखिर भीतर है कौन?"

"हमें क्या पता..." कोई कंधे उचका देता है।

"वो कमबख्त बुड्ढा तो नहीं अंदर?"

"पता नहीं..."

"दिख तो नहीं रहा... सवेरे तो उसे देखा था। फर्श पर लेटे हुए... उसके बाद नहीं दिखा..."

"कितने बजे थे?"

"चार के करीब होगा टैम..."

"मैं तो कहता हूं.. मर-गुजर गया होगा... ठंड से... वरना टट्टी के लिए इतना टैम थोड़े लगता है..."

"कोई क्या कर सकता है..."

"खबर कर देनी चाहिए रेलवे वालों को..."

"देखते हैं... पर कमाल हो गया, आखिर भीतर वाला आदमी बोल क्यों नहीं रहा..."

"बिना टिकट तो नहीं घुस गया भीतर कोई..."

"कौन घुसेगा भीतर... सिवाय उस रात वाले बुड्ढे के... मैं तो कहता हूं, हो गया उसका राम-नाम-सत्त.. दी इंड... खलास... छूट गया दुनिया के झमेलों से..."

"यह स्वेटर किसका हो सकता है?" किसी ने मैल से चीकट हुए स्वेटर को जूते से आगे धकेलते हुए कहा था।

"उसी का है... बिलकुल उसी बुड्ढे का... आखिर बाहर क्यों उतार गया... तभी मरा है... ठंड से..."

"इसका मतलब उस बुड्ढे का हो गया दी इंड..."

"होना ही था... भूख से कब तक भिड़ता... फिर जाड़ा तो इन लोगों के लिए कयामत लेकर आता है..."

तभी सीट से उतर कर वह बच्ची भी वहां पहुंच गई... संडास के बाहर... अपनी मां के साथ।

"क्या हुआ मम्मी?"

"किसी ने भीतर से कुंडी लगा ली है... खोल ही नहीं रहा।"

"मैं खटखटाती हूं..."

"नहीं बेटी... कोई फायदा नहीं... कितने लोग एक-दो घंटे से दरवाजा खटखटा के हार गए हैं..."

"अंदर गया कौन है?"

"कहते हैं, वही रात वाला बुड्ढा है भीतर..."

"उसे तड़के तो देखा था.. ठीक से था..."

"ठीक कहां था... कांप रहा था..."

"तो मम्मी मर गया वो?"

"पता नहीं... अब कोई क्या कह सकता है..."

"तुम्हें कहा था कि मम्मी उसे चाय पिला देते हैं..."

"चाय पीने से क्या वह बच जाता?"

"शायद..."

"नहीं कुड़िए... जाने क्या बीमारी थी उसे...?"

"मर गया बेचारा भूखा-प्यासा... ऊपर से ठंड, मरना ही था उसे... हम सभी ने उसे मार दिया..." छोटी बच्ची उदास हो गई लगती है।

"सभी ने कैसे? चुप नहीं रह सकती... अब लैक्चर बंद, समझी... चल अपनी सीट पर..." उसकी मां सख्त होती दिखती है।

"नहीं मम्मी... ऐसा क्यों हो गया..."

"मुझे नहीं पता... अब चुप कर... मर गया तो हम क्या करें... बोल? उसके साथ मर जाएं?"

"सात... आठ... नौ... दस... ग्यारह... बारह... फिर एक... दो...तीन... लोग दरवाजा खटखटाते रहे थे। कोई रेलवे वालों को बताने नहीं गया था। न ही कोई रेलवे वाला ही रात में डिब्बे में आया था। शाम तक जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो। ताश खेलने वाले यात्री उसी तरह ताश खेलने में लिप्त रहे थे। चाय वाले छोकरे उसी तरह चाय गर्म का आलाप करते रहे थे। खेल-तमाशे करने वाले छोटे-छोटे काले-कलूटे लड़के 'टरेन' में अपने करतब दिखाते हुए पैसे इकट्ठे करने के लिए अपनी झोलियां फैलाते रहे थे। पैसों के लिए फर्श पर झाड़ू लगाने वाले छोकरे भी अपनी तरस वाली सूरत लिए हुए गुहार करते रहे थे... औरतें शादी ब्याह से वापसी पर होने वाली वार्तालाप में लीन थीं... कुछ भी नहीं बदला था...

गाड़ी आखिरी स्टेशन पर पहुंचने वाली है।

लोग अपना सामान समेटने लगे हैं। अभी तक भी संडास का दरवाजा भीतर से बंद है। इस बीच दो बार टिकट चेकर राउंड लगा चुका है। किसी ने उसे यह नहीं कहा कि लैट्रिन का दरवाजा भीतर से बंद हुए लगभग बारह घंटे हो गए हैं। किसी को क्या पड़ी है? ड्यूटी वाले संतरी भी बीच-बीच में चक्कर लगाकर वापस लौट गए हैं। कोई भी नहीं कह पाया उससे, सारा किस्सा।

लोग अब भी फुसफुसा रहे हैं।

एक जना कहता है, "अब तो पक्का हो गया, वह बुड्ढा मर गया..."

"बिलकुल जी... वरना इतना टैम कोई भीतर से कुंडली लगाकर रखता है?" दूसरा जना उत्तर देता है।

"पुलिस वाले खुद आ जाएंगे... गाड़ी के जम्मू पहुंचने पर... ."

"ठीक है, जी, कौन पंगे में पड़े। कोर्ट-कचहरियों के झमेले बहुत बुरे होते हैं मर गया सो मर गया... हम क्यों चिंता करें?"

"अगर वह बुड्ढा ठंड से न मरता तो भूख से मर जाना था उसने... पता नहीं कितने दिनों से भूखा था..."

"उसके स्वेटर की जेब से एक रुपये का सिक्का फर्श पर गिर गया था। जो अभी ज्यों-का-त्यों ही पड़ा था। यही पूंजी थी उस बूढ़े की। लोग स्वेटर को जूतों से टटोलने लगे थे। तभी जाने किसी को क्या सूझी कि जूते की नोक से घिसटते हुए चीकट हुई स्वेटर को गाड़ी से बाहर छितरा दिया। एक रुपये का सिक्का वहीं पड़ा रहा था।

तभी एकाएक हाथ में झाड़ू लिए हुए फर्श बुहारने वाले छोकरे की गिद्धदृष्टि उस सिक्के पर पड़ी तो झट से उसे उठा लिया था उसने। उस बुड्ढे की कुल जमा पूंजी भी खत्म हो गई थी।

गाड़ी कुछ क्षणों में ही जम्मू प्लेटफार्म पर आकर रुक गई थी। लोग अपना सामान उठाए हुए नीचे उतरने लगे थे। गाड़ी खाली हो गई थी। उस डिब्बे की लैट्रिन में भीतर से बंद हुई कुंडी तब तक भी बंद ही रही थी।

अखबार में इसकी खबर छप जाएगी, एकाध दिनों में कि चलती ट्रेन में लैट्रिन के लिए गए एक भिखमंगे की ठंड से मौत हो गई। लैट्रिन का दरवाजा भीतर से बंद होने के कारण तोड़ कर लाश को बाहर निकाला गया... वगैरह... वगैरह... और आदमी एक खबर हो जाएगा।

लेकिन... इस बात की खबर किसे होगी कि उस बुड्ढे की ठंड-भूख से हुई मौत के लिए कौन जिम्मेदार है... गाड़ी के उस डिब्बे से सबसे आखिर में वही छोटी लड़की उतरी है, जो बार-बार पीछे पलट कर देख रही है... उसे अपनी मां पर एक ही गिला है कि अगर उस बुड्ढे को चाय का कप पिला दिया होता तो शायद वह ना मरता... लेकिन किसी के पास वक्त होता तो... तो भी उस बुड्ढे को मरना ही था... वह कहीं और जाकर मर जाता...।

1288, लेन-4, श्रीरामशरणम् कॉलोनी, डलहौजी रोड, पठानकोट, पंजाब-146 001, मो. 98780 78570

विनोद ध्रब्याल राही की लघुकथाएं

निर्भर

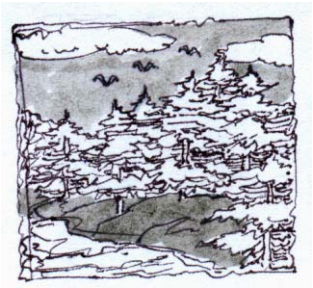

धरती ने मेघ को सराहा, ''हे मेघ! भगवान तेरा भला करे। ज्येष्ठ-आषाढ़ की गर्मी जब मेरी काया को झुलसाती है तो तू ही शीतलता का मरहम लगाता है। तू ही मेरे तन की अगन मिटाता है।''

धरती द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर मेघ बोला, ''लज्जित न कर, मात्! मैं तो तुच्छ हूं। तू मेरी जननी है। जो जल मैं तुझ पर बरसाता हूँ वो तेरा ही तो है। तेरी उष्णता ही जल देती है मुझे। तू ही मेरा पोषण करती है।''

''यह उष्णता मेरी नहीं। यह तो सूर्य का प्रताप है। वही उष्णता देता मुझे। तभी मैं तेरा पोषण कर पाती हूँ। वही परोपकारी है।'' धरती बोली।

सूर्य धरती और मेघ का वार्तालाप सुन रहा था। धरती द्वारा अपनी बड़ाई सुनकर बोला, ''हे धरती ! मैं परोपकारी नहीं। परोपकारी तो नभ है। उसी ने मुझे अपनी विशाल गोद में स्थान दिया। वही माँ-बाप सा प्यार लुटाता है मुझपर। तभी तो मैं तुझे उष्णता दे पाता हूँ।''

नभ अपना गुणगान सुन रहा था। वह गरजा, ''सूर्य! मैं परोपकारी नहीं। मैं तो अपना फर्ज निभा रहा हूँ। परोपकारी तो ईश्वर है। यह मेरी विशालता उसी की दी हुई है। तभी तो तू, चाँद, सितारे और अनगिनत रहस्य मेरी शोभा बढ़ा रहे हैं। सच तो यह है कि धरती बिन मेघ, मेघ बिन धरती, मेरे बिन धरती और तुम सब बिन मैं कुछ भी नहीं। एक दूसरे के बिना हमारा अस्तित्व ही नहीं है। हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं।''

पद्धर की देई

चपरासी ने ग्यारह बजे डॉक्टर के कमरे का ताला खोला। हालांकि अस्पताल खुलने का समय नौ बजे का था। सुबह से ही पंक्ति में लगे लोग एक दूसरे को पंक्ति न तोड़ने की सलाह देने लगे।

तभी पद्धर की देई वहाँ आ गई। उसका नाम देई था और उसके गाँव का नाम पद्धर इसलिए सभी उसे पद्धर की देई कहकर बुलाते थे। वह कंधे पर लंबा डंडा उठाए रखती थी। डंडे के दूसरी ओर कपड़ों की गठरी बांधी होती थी। उसने नजरें घुमाकर पूरे स्थल का जायजा लिया। डंडा नीचे रख दरवाजे के साथ सटकर खड़ी हो गई। लोगों ने उसे पंक्ति में लगने की हिदायत दी परंतु उसने अनसुनी कर दी।

साढ़े ग्यारह बजे डॉक्टर आया। कुर्सी पर बैठकर उसने दो तीन फोन कॉल्स निपटाए। तब तक दूसरा डॉक्टर भी आ पहुंचा जिसकी तैनाती किसी दूसरे अस्पताल में थी परंतु अकसर यहीं देखा जाता था। चाय भी आ गई। बारह बजने को हो आए। लोगों की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। पंक्ति में पीछे खड़े लोगों ने आगे खड़े लोगों पर अंदर जल्दी जाने का दबाव बनाना शुरू कर दिया था। एक दो ने अंदर जाने के लिए डॉक्टर से आज्ञा मांगी परंतु असफल रहे।

तभी अधपगली देई को पता नहीं क्या सूझी। चपरासी को परे धकेलकर अंदर जा पहुंची और धड़ाम से मुक्का डॉक्टर के मेज पर दे मारा। दोनों डॉक्टर सहम गए।

डॉक्टर की ओर ऊँगली उठाकर वह बोली,''सुधर जाओ तुम लोग। सरकार गप्पें मारने की तनख्वाह नहीं देती। जल्दी से मुझे बुखार की दवाई दे दो वरना छोडूंगी नहीं। मुझे दूसरे गाँव शादी में जाना है।''

डॉक्टर ने बिना समय गंवाए थर्मामीटर उसके मुँह में ठूँस दिया। देई से हिम्मत पाकर तीन चार मरीज चपरासी को परे धकेलकर अंदर आ गए।

रा.मा.पा.अनूही (कोटला), जिला कांगड़ा हि. प्र.-176205
मो : 96259 66500

अमर बरवाल 'पथिक' की कविताएं

शब्द

शब्दों का अकाल पड़ा है
पैदावार कहां से हो।
मन की मिट्टी बांझ हो चली
कविता यार कहां से हो।
ईश्वर से हम मिलने निकले
मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे
बंद हुए जब मन के चक्षु
साक्षात्कार कहां से हो।
गली-गली में खुली दुकानें
धर्म के ठेकेदारों की
हो मन में बारूद भरा तो
परोपकार कहां से हो।
मृग-तृष्णा सा है जीवन
व्याकुल और बेचैन 'पथिक'
बाहर कुछ और भीतर कुछ है
फिर उद्धार कहां से हो...

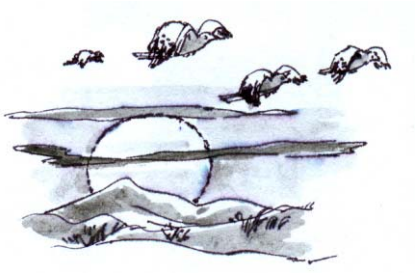

...2...
शब्द जब आकाश से उतरते हैं
जेहन के चैकपोस्ट से गुजरते हैं
कागज पर आ कर थम जाते हैं
आंख को नम भी कर जाते हैं
कभी तो उपनिषद से लगते हैं
कुरान की कभी आयतें बन जाते हैं
गुरुबाणी के शब्द बन कर
रूह में सीधे उतर जाते हैं
आदमी माध्यम है कब रचता है
रब की मर्जी से खुद ढल जाते हैं

...3...
मस्तिष्क

नींद और ख्वाब के चक्र-व्यूह को
जब- जब तोड़ता है
शब्दों के पीछे...
बेलगाम दौड़ता है।
उन में ढूंडता है ...
अपने अनगिनत सवाल
और उनके जवाब...
सफा-दर-सफा.
लगाता है जिन्दगी का हिसाब
रोजमर्रा की संवेदनाएं...
उमड़ पड़ती हैं ...
भड़ास स्वरूप
और वो समझता है
उसने कुछ नया रच दिया
समाज को नया सच दिया
मन ही मन मुस्कुराता है
प्रियजनों को सुनाता है
लेकिन शायद यह भूल जाता है
कि वो शब्दों को नहीं।
शब्द उसे रच रहे हैं...
मूर्ख है नासमझ है...
लेखनी को अपना समझ रहा है
नाहक शब्दों से उलझ रहा है।

...4...

तैर रहे थे यहां-वहां
कुछ शब्द जो मेरे पास आए।
कहें हमें कुछ ऐसे बांधो
हम भी शाश्वत हो जाएं।...

जुदा-जुदा जब तक होंगे हम
कोई समझ ना पाएगा
एक सूत्र में हमें पिरो दो
अपने अर्थ समझ पाएं...
बिखरे हुए हैं इस सृष्टि में
अलग-अलग परिधानों में
अनजाने बन कर फिरते हैं
दुनिया के वीरानों में।
कोई ऐसा यत्न करो
मिलजुल कर कुछ कर पाएं।
शब्द हों या मानव हों दोनों
जुदा-जुदा बेमतलब हैं
जब भी चले वह कदम मिला कर
युग परिवर्तन कर पाए।

...5...

शब्द बिन कहे चुपचाप
ही सब कह गये।
हम उन्हें बस देखते
ही रह गये।
खोल दी आंखें कभी तो
कभी विस्मित कर गयी
घर कभी अपने दम पर
नयनों में जल भर गयी।
ज्ञान पर विज्ञान पर
संविधान पर कभी ध्यान पर
विकास पर इतिहास पर
व्यंग्य और उल्लास पर
धर्म पर कभी कर्म पर
जीवन के अनबुझे मर्म पर
जब शब्द एकत्रित हुए
कुछ तार झंकृत हुए
संसार को जागृत किया
मनुष्य को अमृत दिया।

उपकरणीय अभियंता,
डॉ. यशवंत सिंह परमार बागबानी एवं वानिकी
विश्व विद्यालय, नौणी, सोलन, हि.प्र., मो. 94184 72685

कविता

चक्र

● **पुष्पा मेहरा**

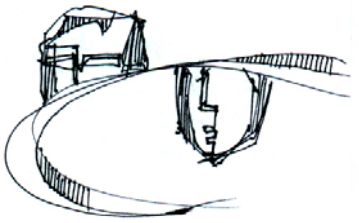

आश्रय पा बीज का
मां धरा की गोद में
पलकर बढ़ी हूं
शरीर-परिवार-जाति
धर्म समाज के
कुंदन से गढ़ी हूं
चमक इसकी खो न जाए
इसी धुन में रमी हूं।

कोई मुझसे कह रहा है
चांद, तारा, सूर्य बनकर
स्वतंत्र हस्ती है तुम्हारी
पर तुम तो सीमाओं से घिरी
निरी भ्रम में रमी हो।

कोई कह रहा है मुझसे गुनगुनाकर-
मैं- माटी
मैं- पवन
मैं- गगन
मैं- अग्नि
मैं- जल से बनी हूं
नाद हूं मैं-
घूमता जो सात चक्रों में।

बी-201, सूरजमल विहार, दिल्ली-92,
दूरभाष : 011 22166598

रामकुमार आत्रेय की कविताएं

प्रार्थना किस के लिए

सुबह-सुबह
सरकारी स्कूल के दो बच्चे
खड़े हो गए आगे निकल कर
बाकी खड़े थे पंक्तिबद्ध
सिर झुकाए, हाथ जोड़े
उनके सामने
प्रार्थना हो गई शुरू
दो बच्चे जैसा कहते
बाकी के सब वही दोहराते
किसके लिए कर रहे हैं
वे प्रार्थना
तो पूछने पर उन्होंने बताया
शराब की उस बदबू से
पीछा छुड़ाने के लिए
जो आ रही थी बेखटक
उन दो अध्यापकों के मुंह से
जो खड़े थे उनींदे से

उन समाचार पत्रों के लिए भी
जो थमे थे
दो अध्यापकों के हाथ में
जो कुर्सी पर पसरे थे
कार्यालय में।

बहस करते हुए
उन कुछ अध्यापकों की
सुरक्षित वापसी के लिए भी
जो अपने-अपने कारोबार
में व्यस्त थे कहीं
और स्कूल में आए
हो गया था पूरा एक सप्ताह
प्रार्थना तो प्रार्थना थी
जो होनी ही थी हर
हाल में!

नंगे पांवों का सफर

पक्के चौड़े
सपाट राजमार्गों पर
गर्व के साथ दौड़ते
झूठ के शानदार रथ
सस्ती-पुरानी चप्पलें
पहनने के आदी मेरे पांव
नहीं चल सके सिर झुका कर
उनके पीछे-पीछे

मैंने सीखा है कि
सच की राह नहीं होती
कभी भी समतल
उसे चलना होता है
उबड़-खाबड़
कंटीली पगडंडियों पर नंगे पांव

मुझसे बिना पूछे ही
मेरे पांवों ने
अपनी चप्पलों को छोड़कर
राजमार्ग के किनारे
अपना लिया है नंगे पांवों का सफर।

मुर्दों का गांव

बाबा कबीर
आपने जिक्र किया था
तुमने एक पद में
मुर्दों के किसी गांव का
तब
मेरी बुद्धि थी बहुत छोटी
और पद तुम्हारा छिपाए था
अपने आपमें बहुत-बहुत बड़ा अर्थ
इसीलिए माथ पीट कर रह गया था
तब मैं

आज जहां भी जाता हूं
मिलता है वहीं मुझे मुर्दों का गांव
जहां फूलों की, की जाती है निंदा
कांटों का किया जाता है गुणगान
बचपन की आंखों में जहां पानी
अपराधों में लिप्त जवानी
पेड़ की जिस छांव में
करते हैं लोग गुजर-बसर
फाड़कर मुंह
उसी को कहे गंदी छांव
सचमुच बाबा हर गांव है
जिंदा-मुर्दों का गांव।

864-ए/12, आजाद नगर, कुरुक्षेत्र, हरियाणा-136 119.
मो. 0 94162 72588

कविता

हम जो चाहते हैं

● **संजीव कुमार श्रीवास्तव**

पढ़ना चाहते हैं हम
अनुभवों के
एक जीवंत दस्तावेज की तरह तुम्हें
जो दबी पड़ी हो अरसे से
धूल की परतों में लिपटी
किसी जंग खाती आलमारी के दराज में
लिखी गई हो जो
भले ही कुछ अनगढ़ तरीके से।

तराशना चाहते हैं हम
कुछ इस तरह तुम्हें
जैसे किसी शिल्पकार को
किसी अनगढ़ पत्थर में भी
दिख जाया करती है संभावना
किसी अनमोल कलाकृति की
और साकार हो उठने के बाद
आंकी जाती है जिसकी कीमत
करोड़ों-अरबों डॉलर में
साथ ही संजोया जाने लगता है जिसे
विरासत और संस्कृति की
अमूल्य धरोहर के रूप में।

सहलाना चाहते हैं हम
तुम्हारी कोमल भावनाओं को
मानवता के स्नेहिल स्पर्श से
जिसकी छुअन
जीवन भर रोमांचित करती रहे तुम्हें
और जिस किसी को भी छू ले
तुम्हारी परछाई
स्पंदित होती रहे पुलक से
वो भी सारी उम्र।

खेलना चाहते हैं हम
तुम्हारे साथ
शब्दों की गेंद को
अपनी कलम के बल्ले से
बार-बार तुम्हारी ओर उछालकर
बिलकुल सधे/ और तनिक शरारती अंदाज में
ताकि आहिस्ता-आहिस्ता ही सही
उसे अच्छी तरह से

कैच करना सीख सको तुम
और अपनी विरासत व परिवेश की
बेजान पिच पर
खड़ी होने के बाद
जीवन की बाधाओं का विकेट चटखाने में
महारत हासिल हो सके तुम्हें।

गुजरना चाहते हैं हम
तुम्हारी राहों से
तुम्हारी यादों से
तुम्हारे बचपन से
तुम्हारे सपनों से
ताकि उनमें बिछे कांटों की शिनाख्त कर
संभावनाओं और सीमाओं के
बीच के अंतर को पाटते हुए
मुकम्मल बनाई जा सके
तुम्हारे आने वाले कल की राहें
जिसमें अपनी राहें मिलाकर
मंजिल हासिल कर सके
वंचनाओं का दंश झेलती
तुम्हारे इर्द-गिर्द की दुनिया
और इत्तेफ़ाकन
किसी मोड़ पर
तुमसे आ टकरानेवाला
भूला-भटका कोई शख्स।

छेड़ना चाहते हैं हम
उस सितार की तरह तुम्हें
दबे पड़े होते हैं जिसके जिस्म में
अनगिनत राग
जो निगाहें चार होते ही
झंकृत हो उठते हैं
अपने आसपास की नीरवता को चीरते हुए
और गुंजायमान हो उठती है
एकदम से
सारी सृष्टि।

देखना चाहते हैं हम
तुम्हारी आंखों की रोशनी में
उस दुनिया को बिलकुल करीब से
हमारे इर्द-गिर्द होते हुए भी जो
नज़रों से अकसर
ओझल ही रहती आई है अब तक
प्रतिबद्धताएं नाकाफी साबित होती दिखती है कभी-कभी
उसकी निशानदेही में
पर जनमते ही तुम्हारे वजूद का
हिस्सा बन चुकी है जो
जिसमें है तपिश
किसी लुहार की भट्टी में
धधक रही आग की
साथ ही है हंसिये का-सा पैनापन
भूख की जड़ों को अनवरत काटने के लिए
और भटकता फिरता है बचपन जहां
शीशम के पेड़ों से पटे बियाबानों में
घास के गठर की शक्ल में
जिंदगी का बोझ सिर पर लादे।

भीगना चाहते हैं हम
तुम्हारे आंसुओं की बारिश में
जिसमें नमक की तरह घुले हों
बीते क्षणों के तुम्हारे सारे दुःख-दर्द
छुपाती आई हो जिन्हें पीछे छुपी
तुम्हारी विवशता को
समझने की चेष्टा
किसी ने नहीं की शायद।

दिखाना चाहते हैं हम
एक नई दुनिया की राह
विचारों के आकाश में
उड़ा ले जाकर तुम्हें
सबकी नजरों के सामने
समझ के पंख लगाकर तुममें
ताकि अपनी जमीन से
इंच भर सिसके बगैर भी
समेट सको तुम अपने दामन में
बेशुमार चांद-सितारे
और बिखेर सको उन्हें
अपने इर्द-गिर्द की दुनिया में
अंधेरे कोनों में
ताकि पसरता चला जाए
धीरे-धीरे
उजाला-ही-उजाला
चारों ओर।

मुखर्जी नगर, दिल्ली, मो. 99905 18195

दिनेश रावत की कविताएं

फासला

एक तरफ
आलीशान बंगलों के
मखमली लिहाफ में लिपटे लाडले
दूसरी तरफ
मजबूरियों के मारे
गुदड़ी के लाल
जो जीते हैं
आजन्म
अभावग्रस्त जीवन
जिन्हें न निवाला
निगलने को
न लत्ता
ढकने को तन
जिसके चलते जुट जाते हैं
बालपन से ही वे
जुटाने में इन्हें
और
बनते हैं सहयोगी
परिजनों के
बस!
गरीबी-अमीरी का
यही फासला बन जाता है
हमेशा के लिए
और बना रह जाता है ताउम्र
जिस कारण वे
पहुँच नहीं पाते हैं वहाँ
उन्हें पहुँचना होता है जहाँ।

विश्वास

इतना तो तय है
कि
एक न एक दिन
तुम्हें
सुनाना ही होगा फैसला
मेरी मेहनत व मुकदर का
आखिर कब तक
लेते रहोगे
परीक्षा
मेरे सयंम व संघर्ष की

मैं नहीं
कहता है
मेरा विश्वास
जब भी सुनाया जायेगा
फैसला
जीत तुम्हारी नहीं
मेरी होगी।

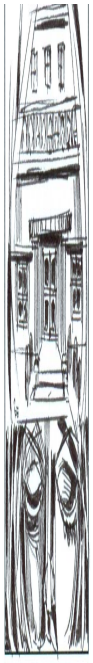

सपने

सपने कौन नहीं देखता?
चलने के
उड़ने के
आगे बढ़ने के
शिखर पर चढ़ने के
आसमाँ को छूने के
मगर होते हैं पूरे सिर्फ उनके
जो
जकड़े नहीं होते
बेड़ियों में
वरना
अभाव संसाधनों का और
असमानता अवसरों की
तोड़कर रख देते हैं पंख
भरने से पहले ही उड़ान।

रा.प्रा.वि.-मेतली, जौलजीबी, जनपद-पिथौरागढ़, उत्तराखंड
सम्पर्क 9927272086

पुण्य संस्मरण

वरिष्ठ साहित्यकार रामदयाल नीरज का जाना

'मास्टर जी' और 'गुरु जी' के नाम से विज्ञात श्री रामदयाल शर्मा जी नीरज, 8 नवंबर 2015 को अपनी इहलीला समेटकर एक लंबी यात्रा पर चले गए। साहित्यिक, सामाजिक जगत् में उनका अभाव खलता रहेगा। साहित्य के कार्यक्रमों, सामाजिक- सांस्कृतिक आयोजनों में उनकी उपस्थिति, माहौल को खुशनुमा और गरिमापूर्ण बना देती थी। पहले, अध्यापन और बाद में, लोक संपर्क विभाग की मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' के यशस्वी संपादक होने से लेकर सेवानिवृत्ति के अनंतर भी वे अपनी रुचि के लोक साहित्य; लोकनाट्य, लोकगाथाओं एवं लोककथाओं पर शोधरत रहे। 'सरस्वती नदी' पर इकट्ठे किए अनेक लेखों पर वे निरंतर चिंतन करते रहते और जब भी मिलते, कहते आप तो सारस्वत हो, कितना काम किया?

1 जून, 1920-8 नवंबर, 2015

रामदयाल जी की, वैसे भले ही कोई कविता, कहानी, ग़ज़ल, गीत, निबंध की स्वतंत्र पुस्तक सामने न आई हो, परंतु 'लोक गाथाओं' पर उन द्वारा संपादित पुस्तक 'हिमाचल की लोक गाथाएं' बड़े काम की है, जिसमें सारे हिमाचल की जिलावार लोक गाथाओं को अनुवाद समेत, अपनी संपादकीय सोच के साथ प्रस्तुत किया है। लोक साहित्य पर उनकी मजबूत पकड़ का यह अच्छा प्रमाण है। लोकसाहित्य के अनेक शोधार्थी उनकी इस पुस्तक से लाभान्वित होते हैं।

वे 94 वर्ष के सजग, सावधान, अध्ययनरत, चर्चा पटु साहित्यकार थे। किसी कार्यक्रम में, सादर बुलाइए, वे अभी भी विमर्श करते थे। 'हिमप्रस्थ' की संपादकी ने उन्हें अनेक तजुर्बे दिए थे। उन्होंने पत्रिका को, देश की बड़ी पत्रिकाओं की समकक्षता में ला खड़ा कर दिया था।

'हिमप्रस्थ' की प्रारंभिक अवस्था पर चर्चा करते हुए वे हंसते हुए कहते थे कि उस समय शुरुआती दिनों में न लेखक थे न संपादकीय सहयोगी। 'खुद ही सारी प्लानिंग करता, खुद ही लेख लिखता, और खुद ही संपादकीय दायित्व निभाता।' वे सच में एक जिम्मेदार व्यक्तित्व थे, जो जिस भी काम का दायित्व ले लेते, उसे बखूबी निभाते। वे कहते, बाद में तो 'हिमप्रस्थ' में सत्येन शर्मा, श्रीनिवास श्रीकांत, किशोरी लाल वैद्य, ज़िया सिद्दीकी आदि का सहयोग मिला और 'हिमप्रस्थ' का पूरे देश में नाम हो गया।

'नीरज; जी हरफनमौला व्यक्ति थे। कभी लहर आई, तो अध्यापक हो गए, कभी मन किया तो मुंबई चले गए, कभी लोक संपर्क विभाग में नौकरी कर ली तो कभी मंचीय नाटकों की ओर तो कभी लोकनाट्यों की तरफ हो लिए। उन्हें, हिंदी, अंग्रेज़ी, पंजाबी, बंगला के ज्ञान के साथ हिमाचल की अनेक बोलियों की बारीक पकड़ थी। अभी दो साल पूर्व ही, 'गेयटी' थियेटर शिमला में, गुरु रवींद्र नाथ टैगोर, शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में, हिमाचल, भाषा कला अकादमी द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने पढ़े गए पर्चों पर जो गहन विमर्श किया, और गुरुदेव के जीवन से संबंधित जो मार्मिक प्रसंग सुनाए, वे उनकी हिंदीतर साहित्यकारों के बारे में विशिष्टता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त थे।

रामदयाल जी, मित्रों के मित्र और जिज्ञासु वृत्ति के मधु संचयक थे। उनके पुस्तकालयों में, इतिहास, पुराण, साहित्य, लोक साहित्य, मनोविज्ञान एवं समाज विज्ञान तक की अनेक पुस्तकें थीं। इतनी बड़ी आयु तक कायिक, वाचिक, पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए, साहित्य साधना में रत रहना, कोई मनीषी रचनाकार ही कर सकता है। वे सदा हंसते हुए ही मिलते और खुश-खुश ही विदा होते। आज उनके जाने से उनके सारे इष्ट-मित्र, परिवार, रिश्तेदार गमगीन हैं। ईश्वर, उनकी आत्मा को यथाभिलषित दें और उनका लोकोत्तर मार्ग प्रशस्त करें।

000